Chapter-1

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M.S. University of Baroda

प्रथम अध्याय

संस्कृति एक विषद् परिचय

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

प्रथम अध्याय

संस्कृति एक विषद परिचय

संस्कृति शब्द से हम सभी परिचित हैं। जब भी हम संस्कृति के विषय में विचार करते हैं, तो संस्कृति को जानने के लिए हमारे पास बहुत कुछ होता है लेकिन उस बहुत कुछ में से भी संस्कृति को जान पाना असंभव सा प्रतित होता है और इसी असंभावना के केन्द्र बिन्दु द्वारा संस्कृति का हम अपने शब्दों में विश्लेषण करने का प्रयत्न करते हैं। जिसके अन्तर्गत संस्कृति समाज को दी गई वह धरोहर है जिसके जरिए समाज संस्कृति को, संस्कृति समाज को एक दूसरे से जोड़ने की कोशिश करता है।

संस्कृति को सामान्य शब्दों में कुछ इस तरह व्याख्यायित करते हैं कि किसी भी मनुष्य का रहन – सहन, बातचीत करना, उसके विचार, उठना – बैठना आदि हमें संस्कृति से परिचित कराता है। हमें किसी मनुष्य को देखने से ज्ञात होगा कि उसकी संस्कृति क्या है। वैसे तो संस्कृति को बहुत थोड़े शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है। संस्कृति को व्यक्त करने के लिए यदि समुद्र के पानी को भी स्याही बनाकर लिखा जाए तो संस्कृति की व्याख्या नहीं दी जा सकती है। परन्तु फिर भी सभी अपनी – अपनी तरह से संस्कृति के बारे में परिचय देते हैं। संस्कृति व्यक्ति के बाह्य विकास के साथ – साथ उसका आंतरिक विकास भी है। जैसा कि डॉ. सावित्री चन्द्र शोभा का कहना है – [१](संस्कृति जन – मानस की एक उदात्त प्रवाहमोन चेतना होती है जो काल देश के परिवेश में रंगों और गन्धों को आत्मसात् करती हुई विकासमान होती है)[१]

संस्कृति का लक्ष्य यही है कि वह मनुष्य को अच्छा बनाए और प्रकृति को संवारे। मनुष्य धर्म को तो छोड़ सकता है परन्तु संस्कृति को छोड़ना उसके लिए असंभव है क्योंकि मनुष्य जो कुछ करता है उसी में उसकी संस्कृति छिपी होती है। मनुष्य में संस्कार कूट – कूटकर भरे होते हैं। उसी से संस्कृति का निर्माण होता है। मनुष्य अपनी जन्मभूमि को कभी भूल नहीं सकता क्योंकि उसके जो संस्कार संस्कृति का निर्माण करने में सहायक होते हैं। मनुष्य ने जहाँ जन्म लिया है वहाँ के संस्कार उसमें निदित रहते हैं तथा वह मिटते नहीं हैं और व्यक्ति की अपनी पहचान उन्हीं संस्कारों के कारण होती है। वह भले ही कितने ही बदले हुए वातावरण में रहे मगर अपनी जन्मभूमि, परिवार, समाज के द्वारा प्राप्त किए संस्कार तथा अपनी संस्कृति को मनुष्य कभी भूला नहीं सकता। इससे किसी भी व्यक्ति को देखकर हम कह सकते हैं कि वह किस संस्कृति का होगा।

संस्कृति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'कल्चर' शब्द का साम्यवादी माना जाता है। जिसका अर्थ है तहजीब, शिष्टता, कृर्षि, खेती, काश्त, उत्पादन, पालन, तरक्की। संस्कृति शब्द की निष्पत्ति 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग लगाने से होती है।

अपनी पुस्तक सांसकृतिक भूगोल में डॉ. मुनीऊद्दीन रिजवी ने लिखा है कि [२](पृथ्वी की आयु लगभग ४.५ अरब वर्ष अनुमानित की जाती है। यह भी अनुमान है कि पहला जीव लगभग १.५ अरब वर्ष पूर्व उत्पन्न हुआ होगा। मनुष्य की उत्पत्ति लगभग २० लाख वर्ष पूर्व बताई जाती है। दूसरे शब्दों में यदि हम पृथ्वी को कुल एक वर्ष माने तो उसकी तुलना में पृथ्वी पर मानव जीवन को उत्पन्न हुए केवल ३ घंटे ५४ मिनट ही हुए हैं। पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास का जन्म हुआ वह अभिनूतन काल कहलाता है।)[२]

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि मनुष्य का जन्म आज से लगभग २० लाख वर्ष पूर्व हुआ था तो क्या तब भी यही संसकृति उनमें विद्यमान थी? यह सब सुविधाएँ थी, जो आज मनुष्य के पास हैं। अगर हम देखे तो हमें ज्ञात होता है कि प्रकृति और बुद्धि के योग से संस्कृति बनती है उसका निर्माण कुछ सालों में नहीं होता बल्कि उसको बनने में हजारों लाखों वर्ष लग जाते हैं। हम कह सकते हैं कि मनुष्य को जब किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो वह उसका निर्माण करता है। इसी प्रकार इसी निर्माण से आज हमारी संस्कृति का यह रुप हमारे सामने है। इसी प्रकार संस्कृति का निर्माण होता रहता है। उसकी यही मेहनत (श्रम) संस्कृति का रुप ले लेती है। हम कह सकते हैं कि जब मनुष्य को बोलने के लिए शब्दों की आवश्यकता पड़ी तो उसने अपनी भाषा का निर्माण कर लिया यहीं से कला संस्कृति का निर्माण हुआ।

वसंत निर्गुणे का कहना है कि [3](मनुष्य ने जब से सीधे खड़े होना सीखा तब से उसे उसके कार्यों को करने में अधिक गति मिली। उसने दौड़ना, शिकार का पीछा करना, संकटों से बचाव करना, खेलना, उछलना कूदना, हाथों का इस्तेमाल करना, नृत्य करना, बोझ ढ़ोना आदि में महारत हांसिल कर ली। शरीर के लचीलेपन का लाभ लेते हुए पैरों और हाथों के जरीये मनुष्य ने प्रकृति के उत्पादनों के माध्यम से उत्पादन और निर्माण के सभी संभवतः द्वार खोले।)[3]

मनुष्य के बिना संस्कृति नहीं बन सकती। कोई पशु संस्कृति का निर्माण क्यों नहीं करता? क्योंकि उसमें मनुष्य जितनी बुद्धि नहीं होती है। प्रकृति संस्कृति के निर्माण में जितना सहयोग देती है उससे कहीं अधिक मनुष्य का विवेक और बुद्धि उसमें सहयोग देते हैं।

जिस वस्तु का मनुष्य सृजन करता है वह संस्कृति का हिस्सा हो जाता है।

[४](मनुष्य ने हजारों वर्षों में कुटुम्ब, कबीला, गोत्र, परिवार, समाज, परम्पराएँ, प्रथाएँ, रीतिरिवाज, अनुष्ठान, संस्कार, संबंध, खेलकूद, गीत, नृत्य, कला, शिक्षा, नीति, धर्म, दर्शन, अदृश्य, जगत, विश्वास, आदि के जरिये सांस्कृतिक वातावरण का ताना – बाना अपने आसपास बुना है।)[४]

सबसे पहले मनुष्य ने कृषि संस्कृति का विकास अपने हाथ तथा पैरों की ताकत से प्रारंभ किया फिर इन्हीं हाथों–पैरों के प्रयोग के कारण औजारों तथा पहिये की संस्कृति का विकास किया। इस प्रकार इस विकास क्रम को आगे बढ़ाते रहे तथा घास – फूस के घर, मिट्टी के बरतन, वस्त्र आदि का विकास किया। मनुष्य की इसी श्रम शक्ति के कारण सभी कलाओं को उसने जन्म दिया और आज तक दे रहा है।

हम बचपन में पढ़ चुके हैं कि आदि मानव कैसा था। वह पहले कच्चा मांस खाता था फिर कहीं से उसे आग से भूना मांस मिला होगा तब उसने देखा होगा यह तो पकाकर खाने में ज्यादा अच्छा होता है, तो उसने पकाकर खाना शुरु किया होगा तथा जानवरों को तीखे – पैने हथियार से मारना आसान होता होगा, तो उसने पैने पत्थरों के औजार बनाने आरंभ किये होंगे। इस प्रकार उसने संस्कृति के विकास में योगदान किया होगा। हम कह सकते हैं कि संस्कृति को मनुष्य पूर्वजों से ही प्राप्त करता रहा है।

जैसे कि माना गया है कि प्रकृति और संस्कृति का एक अटूट रिश्ता है। अगर उस नजरिये से देखा जाय तो प्रकृति के परिवर्तन द्वारा भी संस्कृति का जन्म हुआ है। प्रकृति भी संस्कृति में अपना योगदान देती है। इस विषय में डॉ. मुनीरूद्दीन रिजवी के अनुसार – [५](पुरापाषाणी युग के मानव की जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है इससे ज्ञात होता है कि इस युग के मानव द्वारा सांस्कृतिक वृद्धि में बहुत धीमा कार्य हुआ है परन्तु

उसका विभिन्न वातावरणों में रहने का प्रयास सफल रहा है। पुरापाषाणी युग के अंतिम भाग में जब मानव समूह बनाकर रहने लगे तब धीरे – धीरे विशिष्ट सामाजिक रीतियाँ भी उत्पन्न होने लगीं। धरातल पर होने वाली घटनाएँ जैसे भूकम्प, बाढ़, सूखा आदि के कारण एक बड़ी शक्ति का विचार उत्पन्न हुआ जो इन सब प्राकृतिक घटनाओं को नियंत्रित करती है, उससे भूप, उत्पन्न हुआ। इस प्रकार धार्मिक विचारधाराओं ने जन्म लिया, जो धीरे – धीरे बढ़ती रही व संस्कृति का एक भाग बन गई।)[५]

इसी प्रकार सभ्यता मनुष्य के जीवन यापन का एक अभिन्न अंग है क्योंकि मनुष्य का सभ्य होना ही उसकी संस्कारों की पहचान है और सभ्य मनुष्य में संस्कृति भी विद्यमान रहती है। मनुष्य धीरे – धीरे अपनी आवश्यकतानुसार अपने विकास के मार्ग को प्रशस्त करता रहा है और सभ्यता भी विकसित होती गई। पं. मोहनलाल महतो वियोजी के कथनानुसार –

[६](संस्कृति को जानने के लिए सभ्यता के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है क्योंकि यह दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। सभ्यता साधनात्मक मूल्य है अर्थात् मानवजीवन के बाह्य पक्ष, रुप, मूल्य आदि को इसी के द्वारा जाना जा सकता है और जब हम मानव के आंतरिक पक्षों और मूल्यों को जानने की जिज्ञासा प्रकट करते हैं तो वह संस्कृति हो जाती है। सभ्यता मानव को कभी बहुत उच्चस्तर पर ले जाती है और कभी जाति आदि भिन्नताओं में उलझाकर उसे मूल्यहीन कर देती है। संस्कृति अपने उच्च और कर्मशील दार्शनिक रुप में सभ्यता की इसी मूल्य – हीनता को दूर करने का प्रयास करती है।)[६]

इसी तथ्य को उजागर करते हुए डॉ. देवराज लिखते हैं कि [७](संस्कृति उस बोध या चेतना को कहते हैं जिसका सार्वभौम उपयोग स्वीकार हो सकता है, निर्वैयक्ति

रुप से अर्थवान है। संस्कृति वह शक्ति है जिसे मनुष्य अपने धर्म, संस्कार और वातावरण से प्राप्त करता है – सभ्यता मनुष्य के विकारों की द्योतक है। संस्कृति आत्मा के अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है। सभ्यता मनुष्य को प्रगतिवाद की ओर जाने का संकेत करती है। संस्कृति उसकी आंतरिक और मानसिक कठिनाइयों पर काबू पाने में सहायक सिद्ध होती है।)[७]

मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार अपनी जरुरत की वस्तुएँ बनाता रहता है तथा उसका समय – समय पर उपयोग करता रहा है। जैसे कि पहले मनुष्य ने खड़ा होना सिखा और फिर खाना – पीना, शिकार करना, समूह में रहना, परिवार बनाना, इसी तरह से उसने अपनी आवश्यकतानुसार अपने रहन – सहन, रीतिरिवाज, वेशभूषा आदि में समय – समय पर परिवर्तन किए तथा आज भी कर रहा है और करता रहेगा। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि मनुष्य की संस्कृति तो उसी प्रकार से है परन्तु समय – समय पर वह उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता रहता है।

इसी विषय में डॉ. सावित्री चन्द्र शोभा के मतानुसार – [८](संस्कृति के मुख्यतः दो रुप है। प्रथम भौतिक उन्नति या उपलब्धि के रुप में जिसे सभ्यता की संज्ञा दी जाती है और जो किसी समाज की व्यावहारिक उपलब्धियों का परिणाम है। उसमें जाति के आचार – विचार, जिनमें उनके रहन – सहन, वेशभूषा, खान – पान एवं विविध कलाओं की उन्नति आदि का समावेश होता है।

द्वितीय, वैचारिक और भावनात्मक पक्ष है जिसमें जाति के विश्वास, आस्थाएँ, मान्यताएँ एवं उद्देश्य निहित होते हैं जो आध्यात्मिक और सामाजिक दोनों हैं।)[८]

संस्कृत भाषा ने भी संस्कृति में काफी योगदान दिया है। संस्कृत भाषा भी संस्कृति की जनेता है क्योंकि मनुष्य ने जब आपस में बोलचाल का व्यवहार किया

तब संस्कृत भाषा ही अपनाई गई। संस्कृत भाषा को देवों की वाणी माना गया है, और बिना संस्कृत भाषा के ज्ञान के हम संस्कृति के मूल तक कैसे पहुँच सकते हैं, क्योंकि संस्कृति का ज्ञान, कौशल, अनुभव सब संस्कृत के ग्रंथों से हमें प्राप्त होता है। भाषा भी संस्कृति की वाहिका होती है। संस्कृत भाषा को हम भारतीय संस्कृति में एक अमूल्य स्थान देते हैं भारतीय संस्कृति में हम जीवन को चार भागों में बाँट सकते हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही संस्कृति को विकास की ओर उन्मुख करती है। भारत में जो भी आया है वह यहीं का होकर रह जाता है इसलिए भारत देश को महान कहा जाता है। यहॉ पर हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाइ सभी मिल – जुलकर रहते हैं क्योंकि यहाँ की संस्कृति ही कुछ ऐसी है जो सभी को अपना लेती है और कहीं पर भी इस प्रकार की संस्कृति देखने को नहीं मिलती है। तभी तो यहाँ पर भिन्न – भिन्न जाति के लोग होते हुए भी एक होकर रहते हैं। यहाँ पर भिन्नता में भी एकता देखने को मिलती है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि एक भारतीय संस्कृति ही ऐसी है जो सभी को अपने में समाहित कर लेती है।

भारतीय संस्कृति :

[१](भारतीय संस्कृति को आचार्य क्षितिज मोहन ने एक वटवृक्ष कहा है। भिन्न – भिन्न युग – युग से भारतवर्ष में धर्म की बगल में धर्म और एक मत के साथ दूसरा मत विराजमान रहा है और एक दूसरे को ग्रास नहीं बनाया, दूसरे को ग्रास बनाकर सटीक होने की प्रथा भारतीय नहीं है इसलिए उस प्रकार की संस्कृति सम्बन्धी मिलन की बात समझने में इस देश के लोगों को कोई असुविधा नहीं होगी।)[१]

भारतीय संस्कृति को हम थोड़े बहुत शब्दों में व्याख्यायित नहीं कर सकते हैं परन्तु फिर भी सभी ने अपने – अपने मतानुसार इसे व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है जैसे एक विद्वान ने कहा है कि –

भारतीय जनमानस की आधार भूमि के रुप में जो एक अजस्त्र प्राणदायिनी अमृतमयी धारा अनादिकाल से अद्यतन भारतीय जीवन में प्रवाहित होती आ रही है वही भारतीय संस्कृति है। यह मिश्र, मेसोपोटामिया, यूनान, सेम, बेबीलोन आदि की संस्कृतियों से भी अधिक पुरानी है यह तथ्य हडप्पा – मोहन जोदड़ों तथा सिन्धु घाटी में हुए उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों से प्रमाणित हो चुका है।

एक सुखत आश्चर्य यह है कि जहाँ विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियाँ नाम शेष हो गयी हैं वहीं भारतीय संस्कृति विविध घात – प्रतिघातों को झेलती हुई भी जीवित है उसके चिरस्थायित्व का कारण है – उसमें अनुष्युत श्रद्धातत्व की प्रधानता, सहयोग भावना, सहिष्णुता, समन्वयात्मकता और विश्वबन्धुत्व का अमर संदेश।

संस्कृति का विकास :

जिस प्रकार से देखा गया है कि संस्कृति का विकास आवश्यकतानुसार समय – समय पर होता रहा है। संस्कृति का विकास होना आवश्यक है क्योंकि यदि हम आवश्कयकतानुसार अपनी संस्कृति में परिवर्तन एवं विकास नहीं करेंगे तो बाकी देशों की तुलना में पिछड़ जायेंगे और समझदारी इसी में है कि हम जरुरत के अनुसार थोड़ा – बहुत परिवर्तन करते रहें क्योंकि परिवर्तन ही जिन्दगी के विकास की पहचान है। वक्त के अनुसार ही जंगल में रहने वाला मनुष्य आज घर में रह रहा है। बैलगाड़ी की जगह हवाई जहाज, वाहनों ने ले ली है। यह सब परिवर्तन जरुरी बन जाते हैं। इस विषय में डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है कि –

विभिन्न प्रदेशों में आपेक्षित पार्थक्य के कारण विशिष्ट सांस्कृतिक. प्रतिमानों का विकास हुआ। इन प्रतिमानों के साथ अलग – अलग विश्वास एवं आचार – अभ्यास संयुक्त हो गए। ऐसे युग आए जब चीन एवं भारत सांस्कृतिक मामलों में सिमौर थे दूसरों की बारी तब जब पाश्चात्य् राष्ट्रों का आधिपत्य हुआ। पिछली चार शताब्दियों से वैज्ञानिक प्रगति की सहायता पाकर पश्चिमी राष्ट्रों ने प्राच्य भू भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर रखा है विश्व अब अतः सचरण के एक दर्जे तक पहुँच गया है। सभी समाज तेजी के साथ उद्योग – प्रधान बनते जा रहे हैं और मूल्य के नये पुंज बनते जा रहे हैं। हमें एक नई सभ्यता के त्यथापूर्ण जन्मकार्य में सम्मिलित होने को कहा गया है। यदि हमे शांति से एक साथ रहना है तो हमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं समझदारी का विकास करना ही चाहिए।

आज तेजी से संस्कृति बदलती जा रही है यह समय है धीरे – धीरे विलुप्त होती हुई कला और संस्कृति के यथोचित संरक्षण का भौतिक यांत्रिक जड़ताओं में घिरते हुए मनुष्य को बचाने का समय है आतंकवाद के चलते संस्कृति की रक्षा का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ है।

संस्कृति की परिभाषा :

संस्कृति को सबने अपने – अपने तरीके से समझकर बताने तथा समझाने की कोशिश की है। कुछ विद्वानों ने उसके लिए अपने तरीके से समझकर उसकी परिभाषा बतायी है। कुछ विद्वानों की परिभाषा का हम यहाँ पर परिचय देंगे जो इस प्रकार से है।

वसंत निरगुणे की पुस्तक लोक संस्कृति में उन्होंने लिखा है –

[१०](मनुष्य की रचनात्मक प्रतिमा का आकल्पन कला, संगीत, साहित्य तथा अन्य सृजन कार्यों में होता है। इनमें से जो लम्बे समय तक लोकमानस में बचा रह जाता है और जिससे वे अनुप्राणित होते हैं वही 'संस्कृति' है।)[१०]

[११](संस्कृति मनुष्य की वह रचना है जिसमें मानव की सृजनात्मक शक्ति और योग्यता का चरम निहित है।)[११]

डॉ. विरेन्द्रकुमार सिंह के मतानुसार

[१२](व्यक्ति के (मानसिक) विचारों से उसका (क्रियात्मक) आचार निर्धारित होता है। भूयश, पुनरावृत आचारों से प्रवृति का जन्म होता है तथा धनीभूत प्रवृतियों से चरित्र बनता है। चरित्र निर्माण की यही व्याष्टिगत प्रक्रिया जब समष्टिगत रुप धारण करती है तब वह संस्कृति कही जाती है।)[१२]

एक अन्य विद्वानश्री बेनी प्रसाद वाजपेयी का मानना है कि –

[१३](ज्ञान द्वारा प्रकृति पर विजय, तत्व ज्ञान के द्वारा, विश्व, आत्मा, परमात्मा, जीवन – मरण, सुख और दुःख की उलझी हुई समस्याओं का युक्तिपूर्ण प्रयत्न मानवी प्रकृति पर विजय अर्थात् चित् की वृतियों का संयम और नियमन, सामाजिक हित

और सेवा का व्यापक भाव, व्यक्तिगत और सामंजस्य – आदि के आदर्शों की व्यावहारिक उपयोगिता का ही नाम संस्कृति है।)[१३]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार –

[१४](नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रथाओं और सेवाभक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रुप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है जिसे हम संस्कृति शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं।)[१४]

डॉ. नीहार रंजन राय के अनुसार –

[१५](खाद्योत्पादन एवं संतान प्रजनन से आरंभ करके संगीत नृत्य – कला एवं साहित्य रचना तथा सांसारिक वासनाओं से रहित अध्यात्म – साधना तक व्यक्ति अथवा परिवार अपने जीवन के विकास एवं संस्कार के लिए जिन समस्त कार्यों में लिप्त या रत होता है वे समस्त कर्म ही जीवन को कर्मित, विकसित एवं संस्कृत करने का कार्य है एवं उनका परिणाम या फल ही कृषि एवं संस्कृति है।)[१५]

डॉ. देवराज के मतानुसार –

[१६](संस्कृति उस बोध या चेतना को कहते हैं जिसका सार्वभौम उपयोग या स्वीकार हो सकता है जो निर्वयात्तिक रुप से अर्थवान है। संस्कृति वह शक्ति है जिसे मनुष्य अपने धर्म संस्कार और वातावरण से प्राप्त करता है।)[१६]

एक विद्वान ने लिखा है – संसारभर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं उनसे अपने आप को परिचित करना संस्कृति है।

संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन महत्वपूर्ण प्रकार रही है। हमारे जीवन का ढ़ंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती, उसका मूर्तिमान

रुप होता है। जीवन के नानाविध रुपों का समुदाय संस्कृति है। साहित्य कला, दर्शन और धर्म से जो मूल्यवान सामग्री हमें मिल सकती है उसे नये जीवन के लिए ग्रहण करना, यही सांस्कृतिक कार्य की उचित दिशा और सच्ची उपयोगिता है।

''संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति है। एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार और दूसरे को समझने की शक्ति है।''

''संस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक जीवन से अधिक है। जब आदमियों का एकदम या समाज एक ही रीति से कुछ करता है, एक ही विश्वास रखता है, एक ही प्रकार के आदर्श सामने रखता है। अपने पुरखों के कामों को समान रुप से आदर, गर्व, गौरव की चीज समझता है तब संस्कृति का जन्म होता है संस्कृति आदमी के सामाजिक जीवन का प्राण है।''

''मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोगकर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है। उसी को संस्कृति कहते हैं। मनुष्य ने जो धर्म का विकास किया, दर्शनशास्त्र के रुप में जो चिन्तन किया, साहित्य, संगीत और कला का जो सृजन किया, सामूहिक जीवन को हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं और संस्कारों को विकसित किया उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।''

समाजशास्त्र के विश्व – ''कोष में श्री मैलिनोवस्की ने संस्कृति को व्यापक रुप में ग्रहण करते हुए कल्चर को निम्नांकित रुप में परिभाषित किया है।

इसमें पैतृक निपुणतायें, श्रेष्ठतायें, कलागत प्रक्रिया, विचार, आदत और विशेषताएँ सम्मिलित रहती है। अतः संस्कृति का सम्बन्ध दर्शन और धर्म से लेकर सामाजिक संस्थाओं की रीति – रिवाजों तक मानव जीवन की समस्त समत्वपूर्ण प्रणालियों से है।''

''संस्कृति नियमों का वह समुदाय है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आदर्श, विधि, क्षमताएँ और आदतें सम्मिलित रहती हैं जिन्हें मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।''

उक्त परिभाषा में समाज के परिपेक्ष्य में मनुष्य की समस्त चेष्टाएँ ही सम्मिलित की गई हैं।

''मानव ने जो प्रगति की है उसमें मूल में बुद्धि और सौन्दर्य की अभिरुचि है। इनका अवलम्बन लेकर वह संसार की यथेष्ट रुपरेखा बनाता जा रहा है। वह स्वभावतः किसी रचना को पूर्ण मानकर सन्तोष नहीं कर लेता बल्कि नित्य ही कल की वस्तुओं को यथा – शक्ति पूर्ण या सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है। सुन्दर बनाने, सुधारने या पूर्ण बनाने का प्रयत्न मनुष्यों की बुद्धि एवं सौन्दर्य भावना के विकास का परिचय देता है। मानव का यही विकास संस्कृति है। संस्कृति का मूल अर्थ सुधारना या पूर्ण बनाना है।''

इस परिभाषा में मनुष्य के सौन्दर्य बोध के साथ पूर्णता का प्रयास सिद्ध होता है। सम्भवतः सुन्दर में शिव की कल्पना भी निहित है।

''संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी है यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति के अंग बन जाते हैं और मरने के बाद अपनी वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों

के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मान्तर तक करती है।''

''संस्कृति वस्तुतः उन गुणों का समुदाय है जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है। संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः मनुष्य की बुद्धि स्वभाव और मनोवृत्तियों से है। संक्षेप में सांस्कृतिक विशेषताएँ मनुष्य की बुद्धि एवं उनके स्वभाव की विशेषताएँ होती हैं।''

इन विशेषताओं का अनिवार्य सम्बन्ध जीवन के मूल्यों से होता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ''किसी भी जातीय अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार वाणी एवं क्रिया का जो रुप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है।''

नर विज्ञान में मनुष्य और मनुष्य जीवन तथा समुदाय की सर्वांगीव व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के नर – ''विज्ञानी टाइलर ने संस्कृति के अन्तर्गत सामाजिक प्राणी मनुष्य के ज्ञान, रीति रिवाज, योग्यताओं और आदतों को समाविष्ट किया है।''

''किसी भी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।''

एक अन्य विद्वान – ''किसी भी समाज, जाति अथवा राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों के उदात्त संस्कारों के पुंज का नाम उस समाज, जाति और राष्ट्र की संस्कृति है।''

मैथ्यू आर्नोल्ड के मतानुसार –

[१७](किसी समाज और राष्ट्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ ही संस्कृति है।)[१७]

डॉ. नेमीचन्द्र जैन भी 'भारतीय संस्कृति जैन अवदान' नामक लेख में सभ्यता से उनके अन्तर को अलगाते हुए संस्कृति को एक अटूट प्रभाह की संज्ञा देते हुए कहते है –

[१८](सभ्यता का उदयास्त संभव है किन्तु संस्कृति वह तो एक अटूट धारा है अखंड प्रवाह उसका विकास संभव है उदयास्त असंभव है।)[१८]

पं. वियोगी –

[१९](भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुन्दर परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जाता है।)[१९]

[२०](व्यक्ति का संस्कार होता है वही समष्टिगत रुप में समाज की संस्कृति है।)[२०]

[२१](संस्कृति का मौलिक अर्थ सुधारना सुन्दर या पूर्ण बनाना है।)[२१]

संस्कृति का अर्थ :

संस्कृति एक विशाल शब्द है इसका शाब्दिक अर्थ सामान्यतः परिष्कृत या परिमार्जित करने की क्रिया या भाव से है। यह संस्कृत भाषा के सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु व क्तिन् प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न हुआ है। इसे मनुष्य के मूलभूत वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार व उसके नानाविद्य रुपों का समुदाय माना गया है।

जिस तरह कि वसन्त निरगुणे ने कहा है कि –

[२२](संस्कृति का शाब्दिक अर्थ संस्कारों की सम्यकृति के रुप में है सम्यक कृति सिर्फ मानवीकृत हो सकती है सम्यक् – सुविचारित होती है।)[२२]

[२३](प्राचीन भारतीय वाङ्मय में संस्कृति शब्द का प्रयोग आचार – विचार के अर्थ में पाया जाता है अंग्रेजी का 'कल्चर' शब्द संस्कृति का अनुवाद है संस्कृति शब्द संस्कृत, हिन्दी, ऊर्दू आदि अन्य भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं में युगों से प्रतिष्ठित है।)[२३]

पंडित वियोगी ने अपनी पुस्तक ''जातक कालीन भारतीय संस्कृति'' में लिखा है –

[२४](संस्कृति का अर्थ है संस्कार क्रिया। इस क्रिया का अर्थ ही जो कुछ पंगु एवं दुर्बल है उसका पूर्णतः संस्कार, संवर्धन या जो कुछ मृत है उसे जलाकर या दफनाकर उसका भी संस्कार साधन।)[२४]

रामजी उपाध्याय के अनुसार –

[२५](किसी भी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन – उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए। समस्त सामाजिक जीवन की समाप्ति संस्कृति में ही होती है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष संस्कृति द्वारा ही नापा जाता है। इसलिए संस्कृति के आधार पर ही विभिन्न धर्मों, समप्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता है।)[२५]

संस्कृति का तात्विक अर्थ :

जैसा कि हम सभी जानते है कि सभी राज्य, प्रदेश की अपनी – अपनी संस्कृति होती है। वह क्यों होती है अगर इस पर विचार किया जाय तो आज से संस्कृति नहीं जन्मी है संस्कृति को जन्म लेने में बहुत वर्ष लगते हैं। आज हम जो संस्कृति देख रहे हैं वह पहले नहीं थी। हम कहते हैं या अनुभव करते हैं कि आज भारतीय समाज में संस्कृति की स्थिति आपत्तिजनक है। हम भारतीय अपनी संस्कृति

को भूलकर विदेशी संस्कृति अपनाते जा रहे हैं। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि हमें अपनी संस्कृति हमारे काम में बाधा रुप लगती है। हम विकास करते तो जा रहे हैं पर अपनी संस्कृति को धीरे – धीरे भूलते जा रहे हैं। हम बड़ों के साथ दोस्त जैसा व्यवहार करते हैं, परिवार के साथ मिलकर एक छत के नीचे नहीं रह सकते हैं, तथा अपना निर्णय स्वयं लेते हैं, किसी बड़ों की सलाह लेना पसंद नहीं करते हैं, हमारा रहने, खाने – पीने का ढ़ंग बदल गया है क्योंकि हमारे काम करने का ढ़ंग बदल गया है। इसलिए हम समझते हैं कि हमें विदेशी संस्कृति के हिसाब से ही रहना चाहिए। जबकि हमारी यह सोच बिलकुल गलत है, भले ही आज हमारे काम करने के ढ़ंग बदल गए हों, मगर हमें अपनी संस्कृति को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

संस्कृति वह है जो मनुष्य का साथ कभी नहीं छोड़ती है भले ही वह कहीं भी रहे। मगर जो उसकी संस्कृति है वह कहीं ना कहीं झलक ही जाती है। विश्व में कहीं भी रहे, कैसे भी रहें, परन्तु उसकी संस्कृति हमेशा उसके साथ रहती है। वह छोड़ना चाहे तब भी उसकी संस्कृति उसका पीछा नहीं छोड़ती है। मनुष्य कुछ समय के लिए भूल सकता है, पर मिटा नहीं सकता है। संस्कृति हर मनुष्य का एक अभिन्न अंग है। वह जहाँ पर जन्मा है, पला है, उसने जो संस्कार पाये हैं वह उन्हें चाहकर भी नहीं मिटा सकता है।

संस्कृति मनुष्य के रग – रग में होती है। वह जरुरत के हिसाब से अपने साधन बदल सकता है पर उसके काम करने, रहने का खाने पीने का, उठने – बैठने के तरीके में संस्कृति की झलक मिल ही जाती है। वह कहीं भी जाये अपनी संस्कृति अपने साथ लेकर चलता है।

भारतीय संस्कृति के अंग :

संस्कृति के विविध अंग हैं। यह अनेक अंगों से मिलकर बनती है जैसे कि धार्मिक, राजनितिक, सामाजिक, कला, विज्ञान, आर्थिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक आदि।

संस्कृति की वर्ण व्यवस्था में हमेशा परिवर्तन होता ही रहा है। परिवर्तन के इस मूल को हम समाज के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए विभाजित कर सकते हैं। या दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति का बीज जब तक समाज की भूमि पर रोपा नहीं जाएगा तब तक समाज की संस्कृति का परिवर्तित होना या राजनितिक संस्कृति का परिवर्तन होना बहुत ही मुश्किल जान पड़ता है। संस्कृति हमारे समाज की ऐसी उर्वरकशक्ति है जो सही मायने में समाज को अपने आचार – विचार और व्यवहार से एक नये और सुन्दर शीतल वृक्ष के रुप में निर्मित कर सकती है। क्योंकि समाज सिर्फ एक व्यक्ति से नहीं बनता है। समाज को बनाने के लिए व्यक्तियों का समूह होना आवश्यक है और व्यक्तियों का समूह तभी बन सकता है जब उनमें व्यवहारिकता की भावना हो अथवा आदान – प्रदान करने की क्षमता हो। व्यक्ति में पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, कलात्मक सम्बन्ध रखते हुए सार्वजनिक दशा के लिए अपने कठिन से कठिन विषयों का बलिदान कर सकने की क्षमता होनी चाहिए। अतः सही मायने में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, कलात्मक यह सभी जो पराकाष्ठायें हैं यह हमारे संस्कृति के उपर काफी प्रभाव डालती है। एक तरफ यह भी देखा जा सकता है कि समाज का दर्पण उनकी वर्ण व्यवस्था आज से नहीं बल्कि वैदिककाल से ही इतिहासकारों ने समाज को निम्नलिखित वर्णों में विभाजित किया होगा जो सीधे हमारे समाज के तत्व पर असर करते हैं जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य, शुद्र यह जो समाज के उन्मुलक है। दूसरी तरफ यह कहें कि असल में वही उनके व्यवस्थापक हैं। इन्हीं के माध्यम से अथवा इन्हीं के व्यवसायिक गुणों के आधार पर जाति का बोध होता है और यह बोध समाज के लिए निति और नियम लागू करता है जिसमें कि भावनाओं का काफी अभाव देखने को मिलता है। कारण की यही वर्ण व्यवस्था के कारण समाज के तत्व में यह विकार आ जाता है कि ऊँची जाति और नीची जाति आखिर है क्या? विकृतियों के कारण सामाजिक तत्व में एक विवाद उत्पन्न होता है और यह विवाद जातिगत अथवा जाति के विरुद्ध का रुप धारण कर लेता है। मनुष्य का स्वभाव शुरु से परिवर्तनशील रहा है। लेकिन जातियाँ अपने हिसाब से सामाजिक दृष्टिकोण को आधारशीला मानते हुए संस्कृति का संचालन करती है।

भारतीय संस्कृति की अपनी एक विशेषता है जिसे आध्यात्मिक तौर पर हम ग्रहण कर सकते हैं। जैसे कि परिवार यह समाज का प्रमुख अंग है और मनुष्य का जो जीवन होता है वह परिवार की परिधि से जुड़ा होता है। क्योंकि परिवार के बिना उनका विकास अधूरा है और दूसरे तौर पर यह भी कह सकते हैं कि समाज का अपना जो अस्तित्व है वह परिवार पर निर्भर करता है। पाश्चात्य् देशों की तुलना में देखा जाय तो भारतीय संस्कृति उनसे कहीं ऊपर है। यहाँ अलग – अलग रहना पसंद नहीं करते। भारतीय संस्कृति संयुक्त कुटुम्ब में रहना ज्यादा पसंद करती है और यह भी कह सकते हैं कि भारतीय परिवार का जो संगठन है, जो अस्तित्व है वह परिवार की भावनाओं से जुड़ा होता है और परिवार ही तय करता है कि हम अपना आदर्श, भाव, विचार, पुत्रों के प्रति जो वात्सल्य का भाव है, शिक्षा के प्रति जो कर्तव्य है, प्रेम के प्रति जो बलिदान है और त्याग के प्रति जो भाव का उन्मोदन है, गुरु के प्रति जो आदर और सम्मान है, यह सिर्फ भारतीय परिवार की संस्कृति की ही देन है और यह

तभी संभव हो सकता है जब हम ऐसे परिवार में रहकर इन व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ अपने आप को जियें। आदर्श समाज का निर्माण तभी संभव है जब एक परिवार का हमारे साथ एक अगण्य दृष्टिगत स्वरुप हो।

मनुष्य समाज की आध्यात्मिक भौतिक अवस्था में जीता है। भारतीय संस्कृति की आर्थिक व्यवस्था पर अगर ध्यान दिया जाए तो इतिहास साक्षी है कि हमारा भारत देश कृषि प्रधान होने के कारण यहाँ पर कृषि को ज्यादा महत्व दिया गया है। जैसा कि दूसरे अर्थ में हम यह भी कह सकते हैं कि एक समय में भगवान ऋषभ देव ने यह उपदेश दिया था कि ''कृषि करो और ऋषि बनो।'' तीर्थकर भगवान ऋषि देव के उपदेश के अनुसार एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि संस्कृति का अंश आर्थिक स्थिति को भी उजागर करता है। जिसके फलस्वरुप एक नये परिवेश की रचना देखने को मिलती है। भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण इनके कृषि स्तर के अधिकतर क्षेत्र में बीज रोपन के पहले ईश्वर की पूजा अर्चना की जाती है। कई जगह तो यह भी देखा जाता है कि रात – रात भर लोग खेत के मेड़ पर बैठकर भजन – किर्तन करते हैं। ऐसा करने से उनका मानना यह होता है कि अन्न देवी प्रसन्न होकर हमें अच्छी फसल से अवगत करायेगी। इन तथ्यों को देखते हुए यह कह सकते हैं कि बिना पूजा – पाठ किये ना तो वह गृह प्रवेश करते है, ना तो किसी व्यवसाय का श्री गणेश करते हैं। किसी छोटे से छोटे व्यवसाय से जुड़े धन्धे में अपने आप को जोड़ते है। उन सबकी विचारशीला जो कि बहुत पुरानी है और यह पुरानी परम्परा बरसों से चली आ रही है। जिसे हम लोग आज भी इस परम्परा को जीते हैं अपने – अपने रुपों में। जैसे गृह प्रवेश हो तो गणेश जी की पूजा करनी चाहिए, व्यवसाय शुरु करना हो तो सबसे पहले गणेश जी की स्थापना होती है, कुछ लोग यज्ञ, कथा भी करते हैं। कुछ सत्यनारायण की कथा करते हैं। जिनके विचारों की जो श्रृंखला होती है उन्हीं कड़ियों

के साथ जुड़ते – जुड़ते वे धार्मिक अनुष्ठान को महत्व देते हुए अपनी संस्कृति को उजागर करते हैं और ऐसा माना जाता है कि किसी भी तरह का कार्य करने के लिए खास कर जो धार्मिक अनुष्ठान से जुड़ा हो। वह बिना अग्नि देव की पूजा किये पूरा नहीं होता ठीक उसी प्रकार भारतीय संस्कृति की यह बहुत महत्वपूर्ण देन है कि यह हमारी परम्पराओं के साथ जुड़ते – जुड़ते आज भी नर्मदा नदी के वेग की तरह प्रभावमान है।

सामाजिक अंग :

समाज के द्वारा हम संस्कृति को कई – कई रुप में देखते हैं जैसे गाँव की संस्कृति गाँव के परिवेश से पनपती है। गाँव में पत्थर की पूजा की जाती है और पत्थर को ही भगवान माना जाता है साथ में यह भी देखने को मिलता है कि गाँव में जो नदियाँ बहती है उन नदियों का महत्व भी उतना ही होता है जितना कि हम देवी – देवताओं को महत्व देते हैं। **गंगोत्री का पानी** हम लोग घर के चारों कोनों में छिड़कते हैं क्योंकि यह पानी पवित्र है। और इससे घर में सुख शांति होती है और यह तभी होता है जब समाज उसको स्वीकार करता है। किसी एक के कारण समाज की संस्कृति का बहिष्कार नहीं कर सकते क्योंकि उसको मानने वाले कई लोग होते हैं और जिस परम्परा में कई लोग होते हैं। वह संस्कृति समाज से परे नहीं है। वह समाज की धरोहर है और ऐसी धरोहर जो हर पल बहते हुए पानी के साथ हर दिशा में हर बहते हुए संस्कृति का एक मूल तथ्य प्रदान करती है। जिससे यह पता चलता है कि समाज की रुपरेखा, अस्तित्व एक संस्कृति पर ही खत्म नहीं हो जाता बल्कि उस संस्कृति से समाज को एक प्रेरणा मिलती है। संस्कार मिलता है और उस संस्कृति से मनुष्य के अन्दर एक बदलाव आता है और यह बदलाव मनुष्य के लिए

एक अलग ही अभिव्यक्ति को व्यक्त करती है। जिससे संस्कृति की रचना का विस्तार बढ़ता ही रहता है और समाज उसी के सहारे अपनी संस्कृति को अपनी परम्परा को अपने जीवन के साथ जोड़ते हुए उन्हें एक मार्गदर्शन देता है। संस्कृति मात्र एक जगह की नहीं होती है, संस्कृति कहीं से चुराई भी नहीं होती है। संस्कृति के उपर किसी का भी किसी तरह का दबाव भी नहीं होता है। वह अपने समय के साथ दीप की तरह प्रज्वलित होती है और एक – एक नवदीप की रचना करती है समाज के द्वारा संस्कृति की रुपरेखा को हम अलग – अलग भागों में नहीं बाँट सकते। क्योंकि अलग – अलग परिवेश में पला हुआ समाज का दृष्टिकोण अलग – अलग संस्कृति को दर्शाता है। उदाहरण – दीवाली, होली। मुस्लिम जैसे रोजा रखते हैं दूसरी तरफ यह भी देख सकते हैं कि हिन्दू धर्म में शादी का रिवाज होता है और मुस्लिम में निकाह पढ़ा जाता है और बदलते हुए समजा में यह भी देखा गया है कि आजकल समाज की रुपरेखा ने एक संस्कृति को और अपना लिया है जिसके अन्दर की आधुनिकरण की विशिष्टता देखने को मिलती है। उदा. – कानूनी विवाह, किसी भी धर्म, जाति, प्रान्त के लोग कोर्ट में जाकर शादी कर सकते हैं। हालाकि यह हमारी संस्कृति के विरुद्ध माना जाता है लेकिन समाज का स्तर इस ओर इतना बढ़ गया है। उस पर किसी भी तरह की रोक नहीं लगाई जा सकती है। सर्वसम्मति के कारण किया गया रिवाज, धर्म यह हमारी संस्कृति को एक नया मोड़ देती है और समाज एक ऐसा शस्त्र है जो प्रत्येक परिवर्तन में भी संस्कृति को बनाये हुए रखता है जैसे कि ''कानूनी विवाह'' ही सही शादी तो होती ही हैं। चाहे किसी भी प्रान्त के लोगों ने की हो अर्थात् संस्कृति कि रुपरेखा सामाजिकता की देन है जिस तरह से कई प्रथाओं ने भी जन्म लिया जिसमें कि पुराने विचारों की शूली पर समाज ने औरतों को चढ़ने के लिए मजबूर किया। उदा. – पर्दा करना, एक ऐसे पुरुष के सामने जिसे रिश्ते में हम भाई का भी

दर्जा दे सकते हैं या फिर हम उसे ससुर का मान देकर पिता का दर्जा दे सकते हैं। हमसे जो बड़े लोग हैं उनके सामने पर्दा का जो चलन था वह आज भी भारतीय संस्कृति के लोगो के घरों में विराजमान है लेकिन अलग – अलग रुपों में।

पर्दा मुस्लिम स्त्रियाँ भी करती है और हिन्दु भी और यह जो पर्दा है यह हमारी संस्कृति की एक ऐसी देन है जो शायद आनेवाले काल के अन्दर भी समाहित नहीं हो सकती क्योंकि यह निरंतर चलनेवाली एक प्रक्रिया है जिसके अन्दर संस्कृति और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक बनते है। समाज संस्कृति की रचना करता है और संस्कृति एक नया आयाम देती है। दूसरे लहजे में देखा जाय तो संस्कृति का मूलभाव यहाँ भी देखने को मिलता है। पूजा – पाठ से लेकर क्रियाक्रम की वृत्ति भी संस्कृति से अछूती नहीं है। अतः यह पूरी तरह से कह सकते हैं कि संस्कृति और समाज एक दूसरे पर पूरी तरह से निर्भर हैं और संस्कृति की ही बदौलत समाज को स्थान मिला है।

इतिहास की पृष्ठभूमि पर गौर किया जाय तो यह भी देखने को मिलता है कि पुराने समय में संस्कृति के दायरे में बहुपतित्व प्रथा भी प्रचलित थी। मध्ययुग में सती प्रथा का भी क्रम कहीं – कहीं देखने को मिलता है। कई जातियों के भेद में अन्तर होने के कारण उन्हें अलग – अलग नामों से संबोधित किया जाता था और साथ में यह भी देखने को मिलता था कि किसी का पति अगर मर गया हो तो वह स्त्री दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी। कई ऐसे नीती नियम ये जो विधवा को जीते जी मारने पर उतारु होते थे। उसका सारा श्रेय समाज के द्वारा पैदा की गई उन मूल संस्कृति पर है जो आज भी कहीं ना कहीं किसी ना किसी गाँव और शहरों में कायम है। संस्कृति के दौर में हैरान भरी दृष्टि हम पर पड़ती है। जिससे हमें यह ज्ञात होता है कि जिस तरह कानूनी विवाह शुरु हुआ है ठीक उसी तरह बगैर क्रिया क्रम किये किसी मृत व्यक्ति

को इलेक्ट्रीक के द्वारा उनका दाह संस्कार भी एक नयी संस्कृति की उपज है। जिसे समाज के ही कुछ तत्वों ने तैयार किया है।

तत्वों की महानता यह भी देखिए कि मनोरंजन की वस्तु में भी अलग – अलग आयाम सामने आये जैसे कि शतरंज, चौरस, मधपान, आभूषण प्रेम, पतंगबाजी आदि खेला शिकार खेलना, तिरंदाजी यह सभी हमारी संस्कृति के अवयव में शामिल ना होते हुए भी एक खास जरुरत को पूरा करने के लिए इसे हमारी संस्कृति में शामिल किया गया और आज जिसे हम पूर्णतः मनोरंजन के रुप में स्वीकार करते हैं। संस्कृति की दुर्दशा के उपर भी कुछ प्रभाव देखने को मिले है।

उदा. जातिभेद छूआछूत यह सब सामाजिक तत्व के वह अवशेष है। जिसे उन्होंने संस्कृति का मूल कहकर लोगों को उकसाया और उसे अपनाने पर मजबूर किया। शुरु से यह चला आ रहा है कि स्त्रियाँ घर में काम करेगी और पुरुष घर के बाहर कार्य करेंगे और यही वजह है कि यह संस्कृति आज भी अपने आप में एक मिसाल कायम की हुई है।

समय के बदलाव के साथ – साथ संस्कृति में भी कई बदलाव आये बेशक बदलाव का मुख्य कारण कुछ भी रहा हो परन्तु उस संस्कृति में सभ्यता और नैतिकता का स्तर दिन – प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है। किसी भी संस्कृति का मुख्य आधार एक समाज के उपर निर्भर नहीं करता बल्कि समाज के द्वारा बनाये गये उन नियमों पर आधारित होता है जिसका अनुशरण करके वे आचार और विचार का संगम स्थापित करते हैं। जैसे धार्मिक स्थिति में धार्मिक की विषय वस्तु पर हम ज्यादा ध्यान देते हैं। मंदिर में जाते हैं, तो जूठे हाथ से पूजा के प्रसाद को भी ग्रहण नहीं करते, लेकिन बदलते हुए अभाव के कारण आज मंदिर, गुरुद्वारा, मस्जिद जो भारतीय

संस्कृति के उन्मूलन है इनका धीरे – धीरे अंत होता जा रहा है। गुरुद्वारा, मंदिर का मतलब सिर्फ पैसा है, मस्जिद का मतलब भी सिर्फ पैसा है, और पैसा मनुष्य की जरुरत तो है ही परन्तु वह संस्कृति के उपर आज संस्कृति को ही बेच रही है। और यह सब तभी संभव हो रहा है क्योंकि बदलते हुए काल में जो विचार श्रृंखला का उदय हो रहा है उसी का कुछ अंश संस्कृति की आड़ लेकर संस्कृति को खत्म करने पर तुला है। अंधविश्वास, ठग, मानसपाठ, मीरा के पद, कुरान, राम की भक्ति यह सभी एक दिखावे का चढ़ावा बनकर रह गया है। अनपढ़ लोग अंध–विश्वास को जन्म देते है। और अंधविश्वास जन्म देता है एक ऐसी संस्कृति जो गूँगी भी है और बहरी भी है। संस्कृति ने जिस तरह से अपनी आहूति दी है। उसमें अगर सबसे ज्यादा किसी ने भूमिका निभाई है तो वह है आज के युग का राजनैतिकरण। जिसके अन्दर ईश्वर की पूजा को भी अलग – अलग रुपों में बाँटकर रख दिया है। जिसमें सिर्फ दिखावे के लिए मंदिर में पंडित की जगह एक ढ़ोंगी व्यक्ति को स्थान दिया है यह सब दुष्प्रभाव आज से नहीं देखा जाता बल्कि यह अथवा इसकी पृष्ठभूमि का निर्माण भी इतिहास के गर्व से पैदा हुआ है।

जैसे कि चाणक्य, शकुनी, केश जिनकी कूटनीति ने कुछ प्रलोभन के कारण अपने आप को इतिहास की नजर में गिरा दिया था। लेकिन काल की होनि ऐसी है कि हर पल – हर क्षण बदले हुए परिवेश को साथ लेते हुए अपने आप को उसमें समाहित करती है। राजनीति के दूसरे स्वरुप से अवगत हमें इतिहास ही कराता है। उदा. –

महाभारत :

महाभारत में पाण्डव और कौरव का युद्ध यह सारे चिन्ह या प्रतिक हमारी राजनैतिक स्थिति को बढ़ावा देती है इन्हीं के अंश से आज की राजनीति में जो

परिवर्तन देखने को मिलता है वह भी पुरानी संस्कृति की देन है। जिसको वर्तमान, इतिहास को अपने कंधों पर ढ़ोता जा रहा है सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए।

[२६](जैसा कि हम सभी जानते हैं कि मनुष्य एक विचारशील प्रणी है और मानव सभ्यता के आदिकाल से ही उनमें अपनी परिस्थितियाँ और वातारवरण को समझाने का सतत प्रयास किया है विभिन्न धार्मिक आस्थाएँ इस प्रक्रिया की उपज है और उनका मानव के सामाजिक एवं भौतिक परिवेश से घनिष्ट सम्बन्ध है। परन्तु यह सम्बन्ध द्वन्द्वात्मक है यन्त्रवत् निर्धारित नहीं। यहाँ एक ओर धार्मिक आस्थाओं का मूल मनुष्य के सामाजिक और आर्थिक परिवेश में खोजा जा सकता है। वहीं यह भी निश्चित है उनके धार्मिक एवं नैतिक आदर्श अक्सर मार्ग चयन में उसका दिशा निर्देश करते हैं। इस प्रकार उसके परिवेश के निरुपण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। भक्ति विचारधारा के ऐतिहासिक अध्ययन से यह बात स्पष्ट रुप से चरितार्थ होती है।)[२६]

संस्कृति कि उपज संस्कारों से भी पनपती है और संस्कार जन्म लेते है मानव के आस्थाओं से। और इन्हीं आस्थाओं से जन्म लेता है भक्ति का भाव जो कि समाज और संस्कृति के परिवेश में पलते है। और यही परिवेश आगे चलकर सूक्ष्म रुप धारण करता है जिसे प्राचीन काल के लोगों द्वारा बताई हुई कई ऐसी बातें सामने स्पष्ट होती है जिससे भक्तिभाव का मूल स्त्रोत बहता है। जैसे राम – सीता, राधा – कृष्ण, श्रीकृष्ण का जन्म अर्थात् जन्माष्टमी।

शिवरात्री, दिवाली, होली, दशहरा, नवरात्री यह सभी ऐसे पर्व हैं जिसे हमने नहीं बनाया बल्कि हमारे पूर्वजों ने इन्हें हमें दिया है। क्योंकि वह चाहते है कि हमारी यह जो विरासत हमें मिली है कहीं वो नष्ट ना हो जाय और यही वजह है कि कलयुग

में भी राम – सीता को राधा – कृष्ण को, दशहरा, दिवाली, होली जैसे पर्व को बड़े हर्षोल्लास से मनाया जाता है। संस्कृति सिर्फ किसी एक की ही होकर नहीं रहती उसे हर पल, हर जाति और धर्म से बंधना पड़ता है। देवी – देवताओं की पूजा अर्चना करना यह हमारी परंपरा में शामिल नहीं है बल्कि परम्परा के चौखट की वह सीढ़ी है जिस पर चढ़कर समाज अपनी संस्कृति की धरोहर को अपने कांधे पर उठाये आगे बढ़ता रहता है। आज बेशक राम की पूजा या फिर राम की कथा एक कहानी में बदल गयी हो, आज चाहे राधा – कृष्ण की जोड़ी मात्र मंदिर तक ही सिमित रह गई हो पर यह सभी जानते हैं कि राम ते तभी उनका वनवास हुआ और सीता जैसी पवित्र नारी थी तभी सीता का हरण हुआ। और बाद में एक ऐसा युद्ध हुआ जो आज दशहरा के रुप में असत्य के उपर सत्य की विजय के रुप में चारों ओर मनाया जाता है। और यह भी हमारी संस्कृति कि महत्वपूर्ण देन है कि कृष्ण की लीला अपरंपार है जो लोगों ने कहा उसे माना गया, मथुरा, वृंदावन इसके साक्षी हैं परन्तु कृष्ण अगर ना होते तो शायग मीरा जैसी कवियत्री का भी जन्म ना हुआ होता। क्योंकि मीरा के पद प्रायः श्रीकृष्ण के लिए ही होते थे और उसमें भी एक बात की पुष्टि देखने को मिलती है कि ईश्वर के प्रेम के प्रति इतनी प्रगाढ़ता होने के कारण मीराबाई को भी समाज ने कलंकिनी कहा अर्थात् संस्कृति जो कहती है उसे ही हमें लेकर चलना होता है। और संस्कृति का सूत्रधार भी समाज ही होता है।

बस समय के बदलाव के साथ समाज में परिवर्तन होता है पर उनके विचारों की श्रृंखला में परिवर्तन का नामों निशान नहीं होता।

जैसे कि हिन्दु धर्म और मुसलमान के धर्म में असमानता देखने को मिलती है। एक वह वक्त था जब संस्कृति की आड़ लेकर हिन्दु और मुस्लिम में झगड़े हुआ करते थे। आज यह वक्त है कि यह झगड़े अब आपस में ना होकर देश पर हावी हो गये हैं।

ठीक उसी तरह [२७](भक्तिकाल की मूल चिंतन धारा में मनुष्य की श्रेष्ठता कर्म से होती है वर्ण से नहीं। जैसे कि संतों के लिए ईश्वर शाह है जो पूँजी देता है जिसे व्याज के साथ चुकाना है ऐसी कई बातें हैं जो कालों के गर्भ से जन्म लेती है और उसी में खो जाती है।)[२७]

राजनैतिक अंग :

संस्कृति के प्रति राजनैतिक रूझान भी देखने को मिलता है चाहे वह ग्रामीण परिवेश हो या फिर शहरी विकास की मूल स्थिति हो क्योंकि राजनैतिक विचारधारा भी परंपरागत होने के साथ – साथ अपने विचारों में परिवर्तन करना पसंद नहीं करती है। और यही वजह है कि भारतीय संस्कृति के अंदर शिक्षा का अभाव बढ़ता ही गाय और यही वजह है कि हिन्दु धर्म की संस्कृति पर एक विराम चिन्ह लग गया। सत्ता को पाने के लिए राजनीति ने संस्कृति का सहारा लिया। संस्कृति ने धर्म को जन्म दिया और धर्म ने परिवर्तन को जन्म दिया और परिवर्तन ने मनुष्य की विचार शिला को नष्ट करने में पूरा सहयोग दिया। आज हम स्वतंत्रता की बात करते हैं, आज हम देखते हैं कि हमारे घर में खाने – पीने का पूरा बन्दोबस्त है लेकिन हम यह नहीं देखते कि हमारे पीछे किये गए बन्दोबस्त सही मायने में हमारे पास सलामत रहेंगे। जैसे कि ईश्वर का हम नाम लेते है तो यह जरुरी नहीं है कि ईश्वर से हम रोज मिलते हैं। लेकिन ईश्वर का नाम लेने से मनुष्य प्रतिष्ठा का पापी नहीं बन सकता क्योंकि जो ईश्वर का नाम ले रहा है यह जरुरी नहीं कि वह पापी नहीं है हिन्दु, मुस्लिम यह दोनों धर्म आज राजनीति की नोंक पर जिंदा है किन्तु आज की यह नीति आज को कल से ही प्राप्त हुई है। और जिसका अनुसरण हम प्रतिदिन करते जाते हैं।

राजनीति भी संस्कृति को अपने आप में जोड़ता है और यही वजह है कि बगैर संस्कृति के राजनैतिक करण नहीं हो सकता। क्योंकि संस्कृति एक ऐसा चोला है जिसे पहनकर राजनीति का स्वरूप भी बदलने लगता है जैसे दिवाली – जो बहुत ही पौराणिक होने के बावजूद भी आज राजनीति के बीच एक प्रश्न का रुप लेकर खड़ी है। मौर्यकाल के चाणक्य को राजनीति के प्रति इतना रुझाव था कि उन्होंने राजनीति का एक – एक गुण चन्द्रगुप्त के लिए संभालकर रखा। कहा जाता है कि संस्कृति का संस्कृति शोषण करती है पर सच यह है कि संस्कृति का शोषण राजनीति के ही माध्यम से होता है। मंदिर में बसने वाली देवी यह नहीं कहती कि मुझ पर सोने का हार चढ़ाओ लेकिन कुछ राजनीतिज्ञ सोने के मुकुट बनाने के चक्कर में लोगों से धन इकट्ठा करते हैं। और देवी के मुकुट के लिए जो धन जमा होता है उसे अपने झूठ की पोटली में बंद करके यह नाम देते है कि यहाँ पर धार्मिक अनुष्ठान होगा और इसका खर्च निम्न है। इससे साफ जाहिर होता है कि धार्मिक अनुष्ठान के लिए आम व्यक्ति तो बैठे ही है परन्तु राजनीतिज्ञ इस रेखाओं से परे हटते हुए हर साल कितने भी धर्मो का अनुशरण होता है उसमें वे अपनी भूमिका तैयार करते हैं। उनके द्वारा की गई यह भूमिका ही मनुष्य को संस्कृति के प्रति शोषण करना या होना सिखाती है। और हम उसे एक धार्मिक अनुष्ठान का नाम देकर छोड़ देते हैं।

जैसे कि भारतीय त्योहार के मुताबिक होली, दीवाली, दशहरा यह सब संस्कृति के एक अंग हैं। जो मनुष्य को मनुष्यता से जोड़ने के लिए अपने आप को सदैव तैयार रखती है। पर यह मुमकिन नहीं है कि संस्कृति के विषय के लिए हम सोच रहे है वह संस्कृति का स्वरुप हमारे विचार श्रृंखला के अनुरुप नहीं हो सकता। इस सबमें राजनैतिकरण होता ही है। क्योंकि जन्म चाहे किसी का भी हो माना जाता है कि उसका अंत निश्चित होता है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में रामचन्द्रजी की

भूमिका भी कुछ इसी तरह से राजनीति के रुप में जन्म लिया। हालाँकि यह तथ्य स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि माना जाता था कि श्रीरामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम थे लेकिन धर्म का अनुशरण तो उन्होंने अपने राज्यकाल में किया ही और संस्कृति के साथ – साथ उनका विलय हुआ जिसके अन्दर धर्म की गोष्ठी ने अपनी एक अलग ही भूमिका बनाई और वह भूमिका थी माता – पिता की आज्ञा का पालन करना। उनके कहे शब्दों का मान करना और वचनों का पालन करना। रामराज्य में भी कैकयी ने अपने स्वार्थ के लिए परम्परा को निभाते हुए राजा दशरथ से उनके द्वारा दिये गये वचनों को पूरा करने का प्रस्ताव रखा और प्रस्ताव में यह शामिल था कि राम को वनवास मिले और भरत को राज्य मिले। कैकयी के द्वारा राजा दशरथ को वचनों की याद दिलाना और राजा दशरथ द्वारा कैकयी के वचनों को पूरा करने का जो रुप सामने साक्षात्कार होता है। यह भी हमारी संस्कृति का एक हिस्सा होते हुए भी राजनीति के रुप में ढ़लते – ढ़लते एक व्यग्र कूटनीति की ओर प्रतिपादित होता है अर्थात् वचन के रुप में संस्कृति राम के समय से ही चली आ रही है। राजनीति का यह दृष्टिकोण एक तरह से देखा जाय तो संस्कृति के पाँव पर खड़ी हुई मात्र एक युक्ति है।

धार्मिक अंग :

समाज का दर्पण संस्कृति के अभाव से अछूता नहीं है क्योंकि संस्कृति हमेशा अनुशासन से लिप्त होती है। और उसे हर एक क्षेत्र में अलग – अलग रुपों में देखा गया है। जनजीवन पर इसका बहुत ही गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। संस्कृति और समाज के इस ढ़लते हुए परिवेश को हम निम्न रुप में देख सकते हैं।

समाज में परिवर्तन उतना ही जरुरी है जितना की प्रत्येक दिन हम भोजन में विभिन्न प्रकार का जायकों का आनंद लेना चाहते हैं। धर्म का दृष्टिकोण समाज के दृष्टिकोण से अलग नहीं होता चाहे नये मकान की नींव रखी गयी हो और उसका पूजन हो रहा हो, या फिर किसी बच्चे का जन्म और पंडित द्वारा कुण्डली तैयार करवाना या फिर विवाह जो हर धर्म में मौजूद है तीज, जितिया, शिवरात्री, दीवाली, होली, दशहरा, उत्तरायण, यह सभी धर्म के वह रुप हैं जिस पर चलकर धर्म ने स्वयं खुद को प्रस्तुत किया है। और समजा एक ऐसा पहलू है जो धर्म के बगैरह रह नहीं सकता।

धर्म का दृष्टिकोण जन्म लेने से लेकर मरने तक के साथ जुड़ा हुआ है। किसी भी कार्य की सिद्धि धर्म के उपर निर्भर करती है। लेकिन समाज की आँखों से देखे तो हर एक क्षेत्र को धर्म विरासत के रुप में अलग – अलग प्रदान की गयी है। पूजा – पाठ करना सिर्फ ब्राह्मण या पंडित का काम नहीं है बल्कि पूजा – पाठ अपने – अपने घर में अपने – अपने तरीके से समय का वह व्यक्ति कर सकता है। जो अपने – अपने धर्मों से वाकिफ है।

जैसे हिन्दु धर्म में मंदिर, ठीक उसी प्रकार मुसलमान मस्जिद में जाते हैं। लेकिन समाज का दृष्टिकोण दोनों के लिए अलग – अलग जरुर है पर धर्म एक ही है। अतः समाज धर्म का उपासक है और धर्म अपने आप में एक नये ध्येय को जन्म देता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण वैदिककाल के होते हुए भी आज के संपूर्ण मानव समाज में इनकी एक अलग – अलग रुपों में पहचान है।

[२८](जैसे वैष्णव संस्कृति के प्रमुख देवता नारायण, विष्णु, संकरकर्षण बलदेव, वासुदेव, कृष्ण, श्री लक्ष्मी, दुर्गा आदि ये सभी विष्णु के बारह अवतार माने जाते हैं।

संकरकर्षण बलदेव मूल रुप से एक ब्राह्मण धर्मी ऋषि मूलक देवता रहे हैं, जिन्हें सामान्यजन वर्ग के बीच प्रबल मान्यता प्राप्त होती रही। ठीक उसी तरह महाभारत में श्री लक्ष्मी विष्णु नारायण की पत्नी के रुप में स्वीकार की गयी थी।)[२८]

समाज के प्रति धर्म में एक बात और शामिल होती है। दाह संस्कार की जिससे की माता अथवा पिता की मृत्यु होने के पश्चात् पुत्र कण्डे की अग्नि को घर से लेकर शमशान तक जाता है और रास्ते भर राम – नाम सत्य है बोला जाता था और ऐसे समय में जो मृतक के करीबी हैं उनका रुदन इतना प्रखर हो जाता है, ऐसा प्रतित होता है। जैसे चारों ओर दर्द की कोई गूँज हो। अतः यह भी धर्म और समाज के बीच एक ऐसा भाव है जिससे धर्म अछूता नहीं है।

समाज में मृतक की आत्मा की शांति के लिए पूजा – पाठ घर में करवायी जाती है, श्राध करवाया जाता है, तेरहवीं में बाल मुंडवाये जाते हैं, यह सभी अंश समाज और धर्म के संस्कृति की धरोहर है। जिसे अपने – अपने रीति रिवाज के अनुसार पूजा जाता है।

समाज में संस्कृति की मान्यता यह भी देखने को मिली है कि प्रतिदिन देवदर्शन करके मन और आत्मा को बहुत शांति मिलती है औस साथ में यह भी शामिल है कि देवदर्शन और पूजा पाठ के पूर्व स्नान करना उतना ही अनिवार्य हो जाता है जितना कि हम खाने पीने में ध्यान रखते हैं।

गंगा इसलिए पवित्र नहीं मानी जाती कि उसमें सिर्फ पंडित स्नान करते हैं बल्कि वह इसलिए पवित्र मानी जाती है क्योंकि गंगा खुद एक देवी है। पूजा और स्त्री यह दोनों के संबंध एक जैसे हैं। और धार्मिक कार्य में सूर्य की उपासना करना व्रत करना, पूजा पाठ करना, यह कुछ ऐसे पहलू हैं जिसे धर्म के अनुसार स्त्रियाँ अधिक

मात्रा में करती है। संस्कृति का यह धार्मिक अंग में दिन – प्रतिदिन की प्रक्रिया के साथ घटता और बढ़ता रहता है। जैसे नवरात्री में नौ दिनों तक स्त्री पुरुष फलाहार करते हैं। सोने के पूर्व ईश्वर की आराधना करते हैं। गृहस्थ जीवन से तंग आकर मनुष्य सन्यास ले लेता है। लेकिन वह भी धर्म के किसी अंग में शामिल होता है। तीर्थ – यात्रा समाज और संस्कृति कि रुपरेखा को चार चाँद लगा देते हैं।

कलात्मक अंग :

भारतीय संस्कृति और कला में बदलते हुए युग के साथ परिवर्तन हुआ है। प्रत्येक कला का अपना एक स्वरुप होता था और उन स्वरुपों की दक्षता या तो कलाकार करते थे या फिर शिलाकार जैसे – जैसे राजा महाराजओं की रूचि बढ़ती गयी ठीक उसी तरह कलात्मकता का भी विकास होता गया और यही वजह थी कि उस समय विदेशों से भी कलाकार बुलाये जाते थे। उन्हें वह सब सामान मुहैय्या करवाये जाते थे जो कि उस कलाकार के लिए महाराजाओं के लिए बनाने उपयुक्त होता था। दौर चाहे साहित्यिक हो या कलात्मकता का सभी में राजनीतिकरण होता ही था। [२९](जैसे कि १५वीं सदी के अंत में नवीन शैली को वाग्वद्ध करने के लिए एक विशिष्ट सभा आयोजित की गई और मान कुतूहल का निर्माण कराया गया।)[२९]

यह भी राजनीति का एक भाग था। ठीक उसी तरह आगरे में स्थित ताजमहल, औरंगाबाद में स्थित ऐलोरा की गुफाएँ, जयपुर में स्थित गोलकुण्डा और लखनऊ में स्थित भूल – भूलैया।

जैसा कि हम लोग मान सकते हैं कि संस्कृति का मूल उद्देश्य समाज और सामाजिकता को उजागर करना है। ठीक उसी प्रकार राजनीति भी संस्कृति से अलग

हटकर दिखाई नहीं देती। क्योंकि कहीं ना कहीं उसका भी समावेश संस्कृति में होता है। उसका अपना एक स्थान है।

भारतीय संस्कृति का ढ़ाँचा जीवन की विभिन्न छवियों को दर्शाता है। इन छवियों के अन्तर्गत ऐसे कई आयामों का जन्म होता है जो हर क्षण अपने परिवेश को रहन – सहन को और समाज को राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान करते हैं। लेकिन इन सबके बावजूद विभिन्न आयामों का स्वरुप तब तक मुखरीत नहीं हो सकता जब तक कि समाज के प्रत्येक दृष्टिगोचर में कलात्मकता को प्रधानता ना दी गई हो। कलात्मकता मात्र एक रचना के समान नहीं है। कलात्मकता की उत्पत्ति मनुष्य की भावनाओं की उपज है और भावनाओं का संचार साधक के रुप में हमें समाज से ही मिलता है जैसे कि नृत्य। नृत्य हम सिखते नहीं है लेकिन एक ऐसी आन्तरिक धारणा हमारे अन्दर विद्यमान रहती है कि थोड़े से धुन में या लायक के मुताबिक हम निम्न नृत्य के जरीये कई ऐसे आयाम को प्रस्तुत कर देते है जो अपनी धार्मिक आस्थाओं से भी जुड़ी रहती है। जैसे कलकत्ता की काली, दुर्गा, जैसे विन्ध्याचल की दुर्गा, शंकर भगवान का तांडव यह सब नृत्य की एक भंगीमा है। ऐसे अंग है जिसे करने के दौरान 'धार्मिक आस्थाओं का बोध सामिप्य प्राप्त होता है। हम उनके द्वारा अर्थात् नृत्य के द्वारा आकाश, वृक्ष, नदी, पहाड़ आदि ऐसे तत्वों को नृत्य में ढ़ालकर प्रत्येक संस्कृति को दर्शा सकते हैं और इसी तरह हम कई राज्यों के कलात्मक दृष्टिकोण को अपने – अपने राज्य, भाषा, परिवेश, समाज की संरचना, पूजा, अर्चना, धर्मोपासक इत्यादि कई, ऐसे तथ्यों को लेकर नृत्य के अन्तर्गत संस्कृति को जन्म देते हुए उसको जन्म दे सकते हैं। जैसे –

गुजरात का नवरात्री, नवरात्री गरबा एक ऐसा महोत्सव है जिसे नौ दिन तक किया जाता है। नौ दिन की यह पूजा, अर्चना और रातभर अंबाजी की परिक्रमा करते

हुए पूरे नौ दिन तक गरबा खेलना, अर्थात् एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को जोड़ती प्रतित होती है और इसी संस्कृति के जरीये एक भाव दूसरे भाव से जुड़ने का प्रयत्न करते है। एक देश राज्य, देश एक दूसरे के करीब आता है। और नृत्य के माध्यम से भी हम अपनी विचारधारा को उत्कृष्ट कर सकते है। दूसरी तरफ से देखा जाय तो खजुराहो का मंदिर, अजन्ता ऐलोरा, ताजमहल, लालकिला, द्वारिका, यह सभी मंदिर कलात्मक दृष्टि से अलग होते हुए भी इसमें संस्कृति की वह अमीट छाप देखने को मिलती है। जिसके द्वारा प्रेम का ईश्वर के प्रति साध्य उत्पन्न होता है। हर एक दिशाओं की अलग – अलग मूर्तियाँ अपने अलग भाव प्रदर्षित करती है। लेकिन भाव के रंग रुप में संस्कृति का ही स्वरुप देखने को मिलता है समाज में लोगों की विचार धारायें बेशक अलग होती है। पर संस्कृति की जहाँ बात होती है। वहाँ पर वह एक हो जाते हैं। इसका एक मात्र कारण यह है कि संस्कृति का झुकाव विचारों से परे है, क्योंकि विचारों से संस्कृति नहीं बनती संस्कृति को हम खुद जन्म देते हैं। जैसे शादी का रीति रिवाज सभी देशों में राज्यों में अलग – अलग तरह से होता है। फिर भी शादी की जाती है। जैसे कि हिन्दु धर्म के लोग अग्नि के सात फेरे लेकर, पारसी गिरजाघर में जाकर, मुस्लिम लोग निकाह पढ़कर शादी करते हैं। लेकिन इनके अन्दर संस्कृति और कलात्मकता का समन्वय उनके कपड़े (परिधान) से स्पष्ट होता है यह बात और है कि पूजा, अर्चना, शादी, ब्याह समाज की एक अनुपम देन है, लेकिन हम इसे उपर दिये गये तथ्यों के अनुसार अपनाते हैं कलात्मकता का बोध आधुनिक काल में हम ठीक उसी तरह से देखते हैं जैसे कि मध्यकाल में देखा जाता था। कलात्मकता का ही असर था कि भारत के राजा इंग्लैण्ड, यूनान से गलीचे मँगवाया करते थे। कलात्मकता को भी काफी स्थान मिला संस्कृति के माध्यम से जिस देवी या देवता की हम पूजा करते है। उसका रंग – रुप आकार परिधान कैसे होने चाहिए क्योंकि जो

जिस धर्म से सम्बन्ध रखते है उनकी मूर्तियों में वहाँ की संस्कृति का प्रारुप मुखरित होना ही चाहिए। अगर मंदिर में नमाज पढ़ी जाय और मस्जिद में देव की पूजा की जाय तो इससे उनकी संस्कृति को जो नहीं मानते है। उनको आघात पहुँचता है। इसलिए संस्कृति कलात्मकता और रिवाज एक दूसरे के पूरक होते हुए भी संस्कृति का महत्व अधिक है क्योंकि संस्कृति से ही समाज की रचना का विकास होता है। संस्कृति से ही हम देश को पहचानते है। कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल संस्कृति से जुड़ा ना होने पर भी कलात्मकता की दृष्टि से अपने होने का प्रस्तुतिकरण करता है। ठीक उसी तरह आगरे का ताजमहल एक कलात्मकता की दृष्टि से एक ऐसा नमूना है। जो संस्कृति से परे है वहाँ पूजा, अर्चना नहीं होती बल्कि ताजमहल के इस मकबरे को देखने के लिए इसकी कलात्मकता को एक नया दृष्टिकोण पेश करते हैं। अतः यह और बात है कि नदी के किनारे ही मंदिर बनना जरुरी नहीं है। एक ऐसी जगह जहाँ पर कि पीपल का पेड़ उग आता है और पेड़ विशाल रुप धारण करने के बाद इसके आकार में कुछ परिवर्तन आते है।

इनके इन परिवर्तनों को लोग कलात्मक दृष्टि से देखते है कि पेड़ पर जो नक्काशी उभरी है कहीं यह ईश्वर की छवि तो नहीं है। और यही छवि यही भाव यही दृष्टिकोण और यही विचारधारा संस्कृति को कलात्मकता से जोड़ती है और कलात्मकता को संस्कृति से। सुल्तानगंज के अजगेबी मठ के बारे में कहा जाता है कि यह मठ अपने आप पानी में से उत्पन्न हो गया। इसलिए इसे अजगेबी मठ के नाम से जाना जाता है। इस मठ के अन्दर शंकर भगवान की कई मूर्तियाँ, कलाकृतियाँ मौजूद है। जो आज भी लोगों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। पानी के बीच महल रुपी इस मंदिर का निर्माण करना असम्भव सा प्रतित होता है। परन्तु कलात्मकता की दृष्टि से अगर इसे देखा जाय तो इसकी तुलना हम समुद्र के बीच द्वारका से कर सकते हैं। जो

कि अपने आप में एक अमीट छाप छोड़े हुए है। और इसमें जाकर पूजा – अर्चना करना यह हिन्दु धर्म की संस्कृति को कलात्मकता की दृष्टि से इसे संस्कृति से जोड़ता है। अतः हम कह सकते है कि संस्कृति और कलात्मकता एक दूसरे के पूरक है।

आर्थिक अंग :

समय से जैसे – जैसे मनुष्य ने जैसे अपने आप को ढ़ालने का प्रयत्न किया वैसे ही समाज के अन्दर जागरुकता का जन्म लेना इस बात की पुष्टी करता है कि संस्कृति का मूल आधार उनकी निर्धनता के उपर भी साथ में चलता है। क्योंकि कोई भी ऐसा देश, गाँव, शहर नहीं होगा जो निर्धनता के अभाव में अपनी संस्कृति को तिलांजली दे दे। क्योंकि मनुष्य की आस्थाएँ, मान्यताएँ, परम्पराएँ यह सभी समाज के पूरक है और समाज पूरक है संस्कृति का।

क्योंकि इन्हीं समाज के बदौलत आज लोक – कथाओं में, धर्म में, सम्बन्धों में जाति व्यवस्था में इसका कूट – कूटकर समावेश हो रहा है। यह जरुरी नहीं है कि निर्धन व्यक्ति अपनी निर्धनता के कारण किसी भी तिज त्योहार को मनाना छोड़ दे रिवाज के मुताबिक पुत्री की शादी अगर जरुरी है तो आर्थिक अवस्था में रहने के बावजूद भी किसी भी तरह से उसकी शादी होगी। यहाँ पर आर्थिक अभाव का प्रारुप देखने को मिल रहा है। परन्तु साथ में यह भी स्पष्ट हो रहा है कि शादी जैसा बंधन को कोई तोड़ नहीं सकता अर्थात् यह संस्कृति का ही झुकाव है। जो निम्न और उच्च वर्ग के लोगों को अपने साथ बाँधे हुए है। ठीक उसी तरह परिवारिक संघर्ष भी संस्कृति के आगे नतमस्तक है। यह जरुरी नहीं कि पिता ही नौकरी करके घर की प्राथमिकताओं को पूरी करे। क्योंकि संस्कृति के कुछ प्रलोभन ऐसे भी है जिसमें की बालश्रमिक भी अपनी मुख्य भूमिका निभाते हैं। जैसे कि वह स्वयं काम करके अपने

घर की कुछ खास जिम्मेदारियों को पूरा करते हैं। पारिवारिक संघर्ष भी संस्कृति का एक दृष्टिकोण है। ग्रामीण समाज के विकास के लिए उच्चवर्ग के लोगों का प्रावधान बहुत जरुरी था लेकिन विकास में बाधाओं का सिलसिला भी साथ में चल रहा था जैसे किसी कृषक के पास थोड़ी सी भूमि हो और वह उसके उपर खेती करना चाहता हो तो उसके लिए भी उसे जमींदार की अनुमति लेनी पड़ती है। ऐसी अवस्था में कृषक की स्थिति के साथ जाति – भेदभाव का भी प्रश्न उठता है। अगर कोई किसान नीच जाति का हो तो उसे जमींदार के दरवाजे भी जाने का हक नहीं है जमींदार के उस पगडंडी पर भी चलने का अधिकार नहीं होता है। जिस पर की रोज गुजरता है। अर्थात् कि यहाँ पर छूआछूत की भावनाओं का भी स्पष्टीकरण देखने को मिलता है। धर्म, रीति रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान मंदिर यह सब संस्कृति के ओतप्रोत समाज के वह दर्पण है जिसमें चेहरा देखने का अधिकार सिर्फ उच्च वर्ग को है और निम्न वर्ग दूर से ही उसमें अपनी भागीदारी निभाते हैं। अर्थात् संस्कृति का भी यहाँ पर किसी ना किसी रुप में आर्थिक व्यवस्था के कारण उनका शोषण होता है।

माना जाता है कि कोई भी कार्य करने से पहले उसके उपर विचार विमर्श करना जरुरी हो जाता है और यही जरुरी अलग – अलग क्षेत्रों में अलग – अलग भूमिका को अंजाम देती है अगर नींव मजबूत होती है तो कहा जाता है इमारत भी मजबूत रहती है। ठीक उसी प्रकार जब हम संस्कृति की बात करते हैं तो संस्कृति एक मात्र नाम की नहीं होती बल्कि संस्कृति का झुकाव हर बड़े – छोटे तबक्के (वर्ग) के साथ जुड़ा होता है। उन्हीं में से हमें यह तय करना पड़ता है कि आर्थिक व्यवस्था को हम किस तरह से मजबूत बनायें कि जब हम संस्कृति का आयोजन कर रहे हो तो उनमें किसी भी प्रकार की खामियाँ नजर ना आयें। खामियाँ भी कुछ इस प्रकार से है कि मंदिर का निर्माण और उसकी पूजा अर्चना। अथवा लोकगीत और उसका

अनुसरण करना या गंगा के बीचों बीच एक मंदिर को स्थापित करना ऐसे कई तथ्य है जो खामियों को संस्कृति के माध्यम से जन्म देने पर विवश हो जाते है। कोई भी कार्य बगैर पूँजी के नहीं होता। पूँजी का योगदान उतना ही उपयोगी है। संस्कृति के आयोजन के लिए जिस प्रकार से भोजन हमारे लिए उपयोगी है। लेनिक लाख हम संस्कृति को एक नया लिबाज पहनाते जाए परन्तु उसमें पूँजी की प्राथमिकता तो देखने को मिलती ही है अर्थात् पूँजी और संस्कृति दोनों एक दूसरे के पूरक होने के बावजूद दोनों के तथ्य में अन्तर नजर आता है। पूँजी निवेश से हम संस्कृति को हम चारों ओर फैलाने में मदद कर सकते हैं। एक गाँव को दूसरे गाँव से जोड़ते है पूरे देश को संस्कृति का पैगाम दिया जा सकता है लेकिन यह तभी संभव है जब सही मायने में हमारे पास पूँजी की अत्यधिक मात्रा हो और निवेश के स्थान पर संस्कृति की साधना हो। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि पूँजी के द्वारा संस्कृति का जन्म निश्चित नहीं है। बल्कि संस्कृति से पूँजी के एक अध्याय का हमें स्पष्टीकरण हो जाता है। जैसे की –

गुजरात का गरबा महोत्सव, जहाँ पर आर्थिक तंगी अगर देखने को मिलती है तो संस्कृति का उत्साह थोड़ा फिका नजर आता है जैसे कि गरबा में गरबा गानेवाले गायक, पंडाल, ढ़ोलक, रोशनी, सजावट जैसी सामग्री पर जो खर्च आता है वह संस्कृति के उत्साह के दौरान ही विलिन हो जाता है। शायद ऐसा इसलिए क्योंकि संस्कृति को पूँजी की आवश्यकता नहीं है क्योंकि संस्कृति खुद एक ऐसा बीज है जिसकी मधुरवाणी से संस्कृति और प्रफुल्लित होती है। परन्तु वर्तमान स्थिति के दायरे में संस्कृति पतझड़ के समान हो गयी है। अथवा दूसरे अर्थों में यह भी कह सकते हैं कि वह अपाहिज हो गयी है। आर्थिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए यह अपाहिज संस्कृति स्वयं को चलाने की कोशिश कर रही है। परन्तु कोई भी परम्परा

पूँजी से नहीं चलती बल्कि उसे चलाने के लिए भावना, विचारों और सबसे बड़ी बात है कि एक साधना की जरुरत होती है लेकिन खोखले विचार से संस्कृति का जन्म नहीं होता बल्कि संस्कृति मानो लुप्त हो गयी हो ऐसा प्रतित होता है ठीक उसी प्रकार जैसे फल से लदा वृक्ष हो अगर वृक्ष के अन्दर खाद या पानी ना डाला जाय तो वह फल को सुखा देते हैं। ठीक उसी प्रकार आर्थिक व्यवस्था और संस्कृति एक दूसरे में विलिन तो जरुर है वह एक नई संस्कृति को पैदा भी करते हैं। परन्तु प्रत्येक संस्कृति पूँजी निवेश करने को कहता है जिसके कारण धीरे – धीरे संस्कृति ही संस्कृति के पतन का कारण बन रही है।

प्राकृतिक अंग :

संस्कृति के विषय में कितनी भी चर्चायें की जाय कम पड़ती है और उसमें नित्य नये परिवर्तन देखने को मिलते है। भारतीय संस्कृति की ओर गौर किया जाय तो हम इस बात से अछूते नहीं हो सकते कि जो एक सामान्य नदी है। उसे हम गंगा माँ समझकर उसकी पूजा करते है। प्रत्येक पूर्णमासी के दौरान उसमें स्नान करते है और गंगा के जल को लोटे में भरकर सूर्य देव को उसका अरग देते हैं। ये प्रकृति की एक अनूठी देन है सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, आकाश, मिट्टी इत्यादि।

प्रकृति की इसी देन को हम अपनी संस्कृति की धरोहर के साथ अपने आपको जोड़ते चले जाते है जिससे कि यह पता चलता है कि सूर्य की पूजा गंगा की पूजा और यह बात सामने आना कि गंगा में डूबकी लगाने से सारे पाप धुल जाते हैं। ऐसी मान्यताओं का संकलन होने से यह तथ्य सामने आता है कि संस्कृति का प्रारुप किस – किस तरह से हमारी परम्पराओं और संस्कृति से जुड़ा हुआ है जबकि हम यह बात अच्छी तरह से जानते है कि गंगा में डूबकी लगाने से हमारे पाप धुलने वाले नहीं है

हमने देखा नहीं है दूसरी ओर सूर्य की उपासना करने के पश्चात् यह भी जरुरी नहीं है कि सूर्य के उपर जल डालने से सूरज के उपर जल चला जाता है। यह तो महज हमारी मान्यता, विचार है जो प्रकृति के माध्यम से हमें हमारी संस्कृति से मिला है। लेकिन फिर भी हम इस संस्कृति को बढ़ावा देते है। क्योंकि परम्पराओं के आँगन से ही संस्कृति रुपी बीज की उत्पत्ति होती है। चाँद की पूजा करके स्त्रियों का यह मानना है कि इससे उनके पति की उम्र लम्बी होती है। लेकिन यह कहाँ तक सत्य है कि चाँद की पूजा करके पति की उम्र लम्बी होती है। लेकिन फिर भी संस्कृति की आगोश में छिपे चाॅद और सूरज की पूजा महज परम्परा नहीं है बल्कि अपनी – अपनी विचार धाराओं का केन्द्र बिन्दु है। जिसे अपने – अपने विचारों के मोती द्वारा पिरोने की कोशिश करते हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित आज कई ऐसी मिसाइलें तैयार है जो चाँद तक पहुँच चुकी है। मगर वह हमारी संस्कृति के बाहर है। इसे हम पूजा, अर्चना में शामिल ना करते हुए मनुष्य की हौंसला अफजाई कर सकते हैं। ठीक उसी तरह जैसे कोई स्त्री अपनी पति की लम्बी उम्र के लिए करवा चौथ का व्रत रखती है। दूसरी ओर यह बातें भी समाज के द्वारा सामने आती है कि कुछ ऐसे वृक्ष होते है। जिससे स्त्रियों का गहरा लगाव होता है। इन्हीं गहरे लगाव में किसी खास वृक्ष को देव की मान्यता दे दी जाती है। वट सावित्री पूजा – जिसके अन्तर्गत सुहागन स्त्री बरगद की पूजा करती है तथा उपवास रखती है और बरगद के चारों तरफ अपनी इच्छानुसार धागा बाँधती है। कई जगह पर इस बात की पुष्टी होती है कि धागा बाँधते वक्त जो हम प्रदक्षिणा करते हैं उस वक्त जो भी हम संकल्प लेते हैं अपने लिए या बच्चों के लिए माँगते हैं। ऐसा माना जाता है कि वह अवश्य पूरा होगा।

स्त्रियों के यह विचार और वड की प्रदक्षिणा करना यह भी प्रकृति द्वारा दी हुई संस्कृति की एक अनुपम देन है। भारतीय संस्कृति को अगर हम देखना चाहें तो यह

भी बात सामने आती है कि प्रकृति के साथ – साथ संस्कृति के अन्दर प्राणियों ने भी अपनी एक खास भूमिका निभाई है। जैसे कि नाग पंचमी।

इस दिन नाग की पूजा की जाती है। उनकी मूर्तियों पर दूध चढ़ाया जाता है और ऐसा माना जाता है कि इससे नाग देवता प्रसन्न रहेंगे। विचारों का दृष्टिकोण और संस्कृति की मान्यता एक दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे के लिए समर्पित है।

ऐतिहासिक अंग :

संस्कृति के उदयकाल में संस्कृति का अपना ही स्वरुप देखने को मिलता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब भी कोई परम्परा पनपना चाहती है तब – तब संस्कृति के साथ उसका एक नया अध्याय जुड़ने लगता है। इतिहास गवाह है कि युद्ध में जाने से पहले राजपूतानी स्त्रियाँ अपने पति के माथे पर देश की रक्षा के लिए तिलक करते हुए यह कहती है कि देश की रक्षा करते हुए अगर जान भी चली जाय तो जाय पर दुश्मनों को देश के आगोश में आने मत देना।

इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ की संस्कृति में एक ओर तो चन्द्र की पूजा करके ईश्वर से उनके प्राणों की लम्बी आयु के लिए दुआ करती है वहीं दूसरे रुप में यह भी देखा गया है कि वही स्त्रियाँ आन और शान के लिए अपने पति को प्राणों की आहूति देने के लिए कहती है। अर्थात् संस्कृति और इतिहास यह दोनों आपस में जुड़े हुए वह घटना है जिसे बदला नहीं जा सकता। बल्कि उसे संस्कृति के माध्यम से दोहरा करके अपना – अपना दृष्टिकोण पेश करते हैं।

संस्कृति के विषय में मात्र कहने से ही संस्कृति के आधेय की समाप्ति नहीं होती है। अगर समुद्र को स्याही बनाकर भी संस्कृति के बारे में लिखा जाय तो भी संस्कृति के बारे में लिखना कम पड़ सकता है। इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है

कि इतिहास संस्कृति की धरोहर नहीं है। बल्कि संस्कृति इतिहास की धरोहर है। संस्कृति ने ही इतिहास को जन्म दिया है।

दूसरे तथ्यों में यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति के लिए अगर स्त्रियाँ अपने पति की आहूति देने के लिए कह देती है। पति की मृत्यु के पश्चात् अग्नि में कूदकर स्त्रियाँ भी अपनी आहूति दे देती है। पर किसी पर पुरुष की बनना पसंद नहीं करती। यह संस्कृति की ही देन है। जो पुरुष और स्त्री के बीच पनपे प्रेम को एक तार से जोड़ती है जैसे शादी का बंधन जो सदीयों से चला आ रहा है। सभी अलग जगहों पर इसे अपने – अपने तरीके से इस रिवाज को पूरा किया जाता है।

अतः त्यौहार से भी संस्कृति का संबंध होता है। जो इतिहास से पल्लवित हुई है इसे इतिहास ने जन्म दिया है। राखी एक ऐसा पवित्र बंधन है जो एक पुरुष को एक स्त्री एक धागे से पिरोती है। जिसे राखी की संज्ञा दी गई है। जिसे इतिहास ने आज के परिवेश में ढ़ाल दिया है। और संस्कृति का एक हिस्सा बन गयी है। जो हमारे साथ हमें एक नयी चेतना प्रदान करती है।

भारतीय संस्कृति का फलक :

भारतीय संस्कृति की आधारशिला को हम अभिव्यक्त तो कर सकते हैं परन्तु उनके अपनाये हुए स्तर को बाँट नहीं सकते क्योंकि यह तथ्य हमारे लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि भारतीय साहित्य के इतिहास में संस्कृति का होना। एक जीवन को हम अनुशासन के रुप में अपनाना चाहते हैं। परन्तु संस्कृति तत्व के रवैये को देखते हुए कितनी ही बातों को हमें नजर अंदाज करना पड़ता है जैसे कि महाकवि कालीदास के द्वारा हिन्दु संस्कृति का स्वर्ण युग में योगदान ठीक उसी तरह रामायण और महाभारत की अपनी विषय वस्तु। यह कहना गलत नहीं है कि भारतीय संस्कृति का उदय और अस्त का केन्द्र बिन्दु एक ही युग के साथ होने के बावजूद उनके अन्दर जातिय संस्कृति की समानता का भी दृष्टिकोण दिखाई देता है। जाति का संस्कृति के माध्यम से बोध कराना अर्थात् पुरानी परम्पराओं को नई परम्परा से जोड़ना है। और इन्हीं परम्पराओं के बीच धर्म का उदय होता है। और इन्हीं परम्पराओं के साथ और कई धर्मों ने उन्नति को एक नया मोड़ दिया है। हम जिस धर्म में भी संस्कृति की बात करते हैं। संस्कृति का स्वरुप विशाल सागर की तरह समाज रुपी लहरों में तैरता हुआ नजर आता है। भारतीय संस्कृति की व्यथा बस यही है कि वह किसी एक के साथ बंधकर नहीं रह सकी। उसने अपने अस्तित्व को निम्न कोटी तक पहुँचाया। इतिहास की तरफ देखा जाय तो धर्म तथा संस्कृतियों में कई तरह के जन्म एवं उसका प्रसार का एकाकीकरण देखने को मिलता है। धर्म नुमाइंदे जब अपने हिसाब से देश को और संस्कृति को एक साथ जोड़ने का प्रयत्न करते हैं तब कई बातों के विरोधी स्वरुप की रुपरेखा सामने देखने को मिलती है। ऐसा हम नहीं कह सकते है कि धर्म, जाति, सामाजिकता की पहल सिर्फ भारतीय संस्कृति में ही देखने

को मिलती है। बल्कि कई ऐसी संस्कृतियाँ भारतीय परिवेश में जीवित रहने के बावजूद वह हमें विदेशी का प्रारुप लगी। कारण चाहे जो भी रहा हो। लेकिन इस बात से अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वेद, पुराण बेशक भारतीय संस्कृति के अंग रहे हों। क्योंकि ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म भारतीय संस्कृति की उपज न होकर दूसरे देशों से आनेवाली जातियों का ऐसा प्रारुप है जिसमें कुशाण, शक, दुण, पठान और मुगल, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेज इत्यादि लोगों का जिक्र करने के पश्चात् भी पूर्ण रुप से इस बात का खंडन नहीं हो सका कि भारतीय संस्कृति की विधा को चुनौती किस देश ने और किन रुपों में दिया। हिन्दु संस्कृति के विषय में इतना कह सकते हैं, कि बौद्ध धर्म जैसा धर्म भारतीय संस्कृति से उदय होने से पश्चात विदेशों की सरज़मी पर भी अपना वरचस्व स्थापित कर सकी। तिब्बत, चीन आदि ने बौद्ध धर्म को सहर्ष पूर्वक अपनाया किन्तु ईसाइयों का प्रभाव यूरोप की संस्कृति से हमेशा दबता ही चला गया। हम जानते है कि संस्कृति शब्द का अर्थ होता है समस्त सिखा हुआ व्यवहार। लेकिन इसी सिखे हुए व्यवहार को हम कितना स्थान दे पाते हैं, क्योंकि प्रत्येक दिन एक वर्ष का निर्माण करता है और एक वर्ष एक सदी का। अतः रामायण से महाभारत सीता से लेकर सती, विवाह से मृत्यु ये सब कर्म के काम कुछ इस तरह से हैं जिसका उन्मोदन करना हमारे वश में नहीं है। अगर हम यह लेकर चलते है कि हमें एक जाति कि संस्कृति को सही करना है तो शायद यह कथन गलत हो सकता है। किसी जाति संस्कृति का मतलब है किसी एक जाति का वरचस्व, जबकि सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो जाति चेतना किसी एक समाज के लिए उन्नत नहीं होती बल्कि यह वह वेणी का निर्माण करती है। जिसमें कई रंग – बिरंगे फूलों का गुच्छा हो। हालॉकि फूल अलग होने के बावजूद भी उनकी खुशबू की गरीमा में कमी नहीं आती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जाति चेतना, व्यक्तिगत या सामाजिक चेतना

नहीं होती। बल्कि वह उस भूमि पर जन्म लेनेवाला वह अंकूर है जिसके साये में एक समय पल्लवित होकर एक संस्कृति का निर्माण करता है। यह हम सभी जानते है कि समाज का निर्माण संस्कृति से ही होता है। किन्तु संस्कृति का निर्माण तो व्यक्ति के कार्यकलापों से ही होता है।

सामाजिक और राजनैतिक का विशलेषण करें तो हमें राजनीति में भी संस्कृति का उन्मोदन दिखाई सा पड़ता है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि राजनीति में संस्कृति का वरचस्व नहीं हो सकता। इस कथन को हम सरासर गलत मानते हुए यह जरुर कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति राजनीति के परिवेश में पलती तो जरुर है परन्तु विकसित वह भारतीय सामाजिक उद्यान में ही होती है। नारी सौन्दर्य में प्रेम की अभिभूति और अनुभूति इस बात को जानने के लिए विवश करती है कि नारी सौन्दर्य में भी संस्कृति का एक छोटा सा स्वरुप देखा जा सकता है। संकुचे स्वर में बातें करना, विवाहित हो तो माथे पर सिंदुर, बिन्दी लगाना, हाथों में चूडियाँ पहनना, पाँव में बिछिया पहनना, मंगलसूत्र यह नारी सौन्दर्य के उत्कृष्ट उदाहरण होने के साथ – साथ इनमें कई ऐसी बातें विद्यमान है कि हम कह सकते हैं कि नारी सौन्दर्य में भी संस्कृति सुख देखने को मिलता है। ठीक उसी भाँति संस्कृति का उदय सूर्य महाभारत के आँगन में भी देखने को मिलता है। महाभारत की सार्थकता कर्म पर आधारित थी। कर्म ही ईश्वर है, जननी है, विन्ध्याचल है, तथा गंगा सागर। लेकिन मानवजीवन का उद्देश्य मात्र महाभारत को जन्म देना नहीं था। बल्कि महाभारत में जिये हुए वह योद्धा, वे लोग जिन्होंने महाभारत को एक नये आयाम तक पहुँचाया अपने ही लोगों के बीच एक युद्ध का आहवान, बँटवारे का एक व्यक्ति विशेष का आहवान, यह सभी महाभारत को अन्जाम देने के सहायक होते हैं। महाभारत के नायक अथवा योद्धा अलग – अलग जातियों से संबंध रखते है। परन्तु उन लोगों की शारीरिक रचना अभिन्नता की

जगह एक जैसी नजर आती है। जैसे शक्तिशाली का वर्णन किया जाय तो भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, दुर्योधन, कर्ण और शकुनि, भिष्म और द्रोण यह सभी मात्र मनुष्य होने के बावजूद उनके अन्दर एक अलग ही शक्ति का पूँज था, जिसके कारण उनके अन्दर भिन्नता के भाव दिखाई देते थे। परन्तु भारतीय संस्कृति की विशिष्टता के अन्तर्गत कई और ऐसे सवाल उठाये जा सकते हैं जिसके अन्दर प्राचीन भारत की निम्नलिखित उपलब्धियों को देखते हुए उनके साथ कई और आयाम को जोड़ा जा सकता है। साहित्य, व्याकरण, तर्क शास्त्र, गणित आदि।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में धर्म, जाति और अस्पृश्ता का अभाव नहीं था। इन सबके बावजूद सबसे ज्यादा लाभ प्राचीन भारतीय जातियों को मिला। यूनानी जातियों का आगमन भी लगभग इसी दौरान हुआ। जातियों के द्वारा मनोवृत्ति एकाएक मनुष्यों की परिवर्तनशील रहनेवाली और यही वह वजह है कि भारतीय संस्कृति ने अपने अन्दर इतिहास और सभ्यता को समाहित करते हुए इसको अपने उपर हावी नहीं होने दिया। उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान, दक्षिण में लंका तथा पूर्व में वर्मा, हिन्द, चीन, जावा आदि पर निम्न उद्योग क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति का वरचस्व देखने को मिलता है, कई सवालिया निशान अब भी भारतीय संस्कृति के कपोल पर अंकित किये जा सकते हैं। क्योंकि वैदिककाल में भी भारतीय संस्कृति के पुनरावर्तन का भाव देखने को मिलता है या जैसे – जैसे समय बितता गया लोगों के विचारों की आधारशीला में परिवर्तन आते गये और भारतीय संस्कृति की एकता मुख्यतः आध्यात्मिक और आत्मिक साधना के साथ जुड़ने लग गया। अपनी इन्द्रियों का काबू पाना भी एक साधना ही था। मन पर नियंत्रण, राग, द्वेष आदि।

विचारों पर विजय आदि का समावेश प्रत्येक क्षण देखने को मिलता है। भारतीय दर्शन, धर्म, परम्परा काल का चरित्र, तुलसी की रामचरित मानस और कई ऐसे खंडित, अखंडित भारतीय संस्कृति के महाआयाम है जिनके पहलुओं को बदलते हुए आधुनिक युग में एक नई आधारशीला प्राप्त हुई। वैदिककाल में कुछ ऐसा भी वक्त आया जिनमें इन तथ्यों को नकारने की कोशिश की गई और भारतीय संस्कृति के जन्म दृष्टि के आदार से अपने आप को सामाजिक, राजनैतिक जीवन की कड़ियों में शामिल करते हुए उसका झुकाव प्रत्येक क्षेत्रों के जीवन मूल्यों पर पड़ने लगा। कहा जाता है कि वेद अथवा वैदिक को तीन भागों में अभिव्यक्त कर सकते है जैसे संहीता, मंत्रभाग, ब्राह्मण और उपनिषद्।

अगर मंत्रों की बात करते है तो समय की विधा को ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते है कि जीवन में उठनेवाली हर्षोल्लास की भावना ही मनुष्य के नैतिकता और अनैतिकता का भाव स्पष्ट कराती है। जैसा कि भारतीय संस्कृति में इस बात का स्पष्टीकरण हो चुका है, कि देवताओं का ध्यान करना अर्थात् ऋग्वेद के अधिकांश मंत्रों का उच्चारण करके देवता को प्रसन्न करना। अतः यह कह सकते है कि वैदिक काल हर्षो उल्लास का काल होने के बावजूद भी कई नैतिक – अनैतिक संस्कारों में भारतीय संस्कृति की उत्पत्ति का मनोवेग देखने को मिलता है अर्थात् क्षमायाचना यह कोई धर्म में शामिल नहीं है विवाह करना यह धर्म की उत्पत्ति हो सकती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि शत्रुओं को जीते के लिए अपने वंशज की बलि चढ़ा दे। सत्य, असत्य संस्कृति की उपज नहीं है परन्तु शराबखोरी, चोरी, हत्या यह सभी धर्म या संस्कृति में शामिल न होकर इसे हम नैतिकता को आचरण के साथ जोड़ सकते है। महाभारत इस बात का साक्षी है कि उन्होंने नैतिकता की सीमाओं का उलंघन न करते हुए एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन,

कृष्ण जैसे की रक्षक ने अपने – अपने संस्कारों के जरीये एक नये युग का आहवान किया।

संस्कृति छोटी और बड़ी नहीं होती वह भाव, विचारों की एक ऐसी पूँजी है जिसको मनुष्य अपने उपर धारण करते ही ईश्वर के समान अपने आप को देखने लगता है। अतः कृष्ण के संवादों में जीवन मृत्यु का दुःख – सुख का मार्ग, कुमार्ग का उपदेश मिलता है। लेकिन उन उपदेशों में संस्कृति का होना नहीं कह सकते। बल्कि संस्कार की पराकाष्ठा को वे पल्लवित कर रहे है ऐसा मान सकते हैं। धर्म और संस्कृति किसी कवि या लेखक की कल्पना का बावंडर नहीं है बल्कि हर एक कालों को मांजता हुआ यह एक ऐसा बीज है जो प्राचीन युग में सिर्फ मिट्टी के अन्दर बीज का रुप लेकर दब गया था।

मध्ययुग में इस बीज में एक अंकुर फूटा और मध्ययुग में ही यह अंकुर इतना विशाल हो गया जिसकी जगह एक पेड़ ने ले ली और इस पेड़ से संस्कृति और संस्कार के ऐसे फल मिले जिससे भारतीय संस्कृति के इतिहास को एक नये केन्द्र बिन्दु के साथ जोड़ने लगा। या यूँ भी कह सकते है कि जो अक्रमण्य है, नास्तिक है, जिसमें सत्यता की कमी है, जो क्रोधी है या फिर जो सदैव दूसरों को मदद करता है, पौराणिक तथ्यों के आधार पर ऐसा माना जा सकता है कि ऐसी विचारधाराओं से लिप्त पुरुष अथवा स्त्री के पास ही लक्ष्मी पनपती है। ऐसे कई प्राचीन के प्रांगण से निम्न विचारधाराओं का खंडन देखने को मिलता है जिसमें संस्कृति और संस्कार दोनों के मिश्रण का स्पष्टीकरण हो जाता है। जैसे रामायण में राजा दशरथ की तीन रानियों के अलावा तीन सौ पचास स्त्रीयों का सम्बन्ध दर्शाता है। लेकिन दूसरी ओर दशरथ के पुत्र राम सिर्फ सीता के साथ ही प्रणय सुख में बंधने के पश्चात् किसी और स्त्री की ओर उन्होंने अपना रुख नहीं किया। ऐसा नहीं कि राजा दशरथ गुणी नहीं थे,

संस्कारी नहीं थे लेकिन कामवासना के प्रति उनका मोह सदैव बना रहा और यही वजह है कि कैकयी के मोहपास में बंधकर उन्होंने रामायण जैसी एक गाथा को जन्म दिया। ठीक दूसरी ओर संस्कार से लिप्त मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने सीता के अलावा किसी और को अपनी दृष्टि में समाहित नहीं किया। जिस तरह महाभारत में भीम तथा अर्जुन ने द्रौपदी के रहते हुए अलग – अलग परिस्थितियों में किसी ना किसी से विवाह किया। परन्तु राम के साथ इस तरह की कोई बात हमें देखने को नहीं मिलती है। महाभारत की हर एक संवादों की घटना कई मनोस्थितियों को पैदा करती है। जैसे कि महाभारत की कुन्ती का पाण्डवों को यह कहना कि जो कुछ भी भिक्षा आप लेकर आये हो आपस में बाँट लो। लेकिन उसका परिणाम यह आया कि पांडवों को द्रौपदी के साथ विवाह करना पड़ा। कहने का तात्पर्य यह है कि काल चाहे जो भी रहा हो लेकिन प्रत्येक काल के अंश से कई ऐसे बाण निकले हैं, जिससे आज भी समाज को आहत होना पड़ता है।

दूसरी ओर स्त्रियाँ दूसरी स्त्रियों के साथ संबंध किये हुए पुरुष की कामना तो कर लेती है परन्तु वह पुरुष उसकी पत्नी के साथ कोई संबंध बनाये यह बर्दास्त नहीं कर सकता।

ऐसी कई बातें भारतीय संस्कृति को इतिहास बनाने में मदद करती है। नैतिकता, प्रेम, पाप, पुण्य, संस्कार, धार्मिक पूजा, अनुष्ठान, रीति रिवाज ये सभी भारतीय संस्कृति के साथ तमाम उम्रभर चलने वाले वह तंत्र है जिसे किसी भी प्रकार से तोड़ा और छोड़ा नहीं जा सकता या फिर यूँ कहिए कि उसके बिना मनुष्य का जीवन नश्वर के समान है। हम ईश्वर की कल्पना करते है, हम वेदों का ज्ञान रखते है, सूर्य की उपासना करते है, ब्राह्मण को ईश्वर का दर्जा देते है, खेत खलिहान में नया बीज डालने से पहले जमीन की पूजा करते है ये सारी जो विधाएँ हैं, मनुष्य के

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

द्वारा ही तैयार किए गए हैं, और मनुष्य इसी के सहारे अपने हर अच्छे, बुरे कर्मों को एक नया आयाम देता है, और इसी आयाम के जरीये मनुष्य के अन्दर सांस्कृतिक तौर पर संस्कृति का विकास होता है। जैसे की यज्ञ के समय जब तक कुछ दान ना करो तब तक यज्ञ अधूरा ही रहता है। यज्ञ करना या कराना यह हमारे वेदों में नहीं लिखा है यह हमारी आस्था होती है, हमारा संकल्प होता है, जो हमें इस ओर खिंचती है, और यह करने के लिए प्रेरित करती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि एक स्त्री की भाँति जिसके अन्दर सहनशीलता या धैर्य का चुनौतियों का एक अपार सागर सा मौजूद है, क्योंकि नारी चाहे तो संस्कृति को भी जन्म दे सकती है और नारी चाहे तो संस्कृति को कचरे की भाँति उठाकर बाहर फेंक सकती है। इसलिए यह कहने में जरा भी हिचक नहीं होती कि नारी से ही संसार है, वेद है, कुरान है और आज है।

जहाँ हम संस्कृति की बात करते हैं वहाँ पर दो महत्वपूर्ण बातों का योगदान देखने को मिलता है, एक पूजा या दूसरे तौर पर भक्ति कह सकते हैं। दूसरा आचरण अथवा अपना व्यवहार।

भौतिक सुख मनुष्य को एक यंत्र बनाकर छोड़ देती है। जीवन का सुख क्या होता है? वह सही तरीके से भोगग नहीं पाते है। अतः इसलिए गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है हे अर्जुन आज धरती पर निवास करना है तो अपने द्वारा किये गये कर्मो का पहले उत्थान करो उसके बाद ही तुम सौ वर्ष जीने की कामना कर सकते हो। गीता में मोक्ष की भी बात कही गयी है, मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन का स्वच्छ होना जितना जरुरी है उतना ही जरुरी होता है भक्ति में अपने आप को लीन करना, प्राणों की आहूति देना और अपनी इन्द्रीयों को अपने वश में करना, तभी तुम आत्मा – परमात्मा में विलिन हो सकते हो। और तभी हम ईश्वर का सानिध्य कर सकते हैं।

गीता, कुरान मात्र संस्कृति की धरोहर नहीं है बल्कि संस्कृति के अन्दर गीता और कुरान का अपना निजी निवास है। जिनके फलने – फूलने से ऐसा जान पड़ता है कि अभी – अभी किस नन्हें बालक ने अपनी माँ को पुकारा है।

भारत के गर्भ में कितनी संस्कृतियाँ पलती है। यह कहना अभी मुश्किल है क्योंकि भौगोलिक स्तर पर देखा जाय तो भारत में भौगोलिक विस्तार की रुपरेखा बहुत दूर – दूर तक फैली हुई है। भारत को दूसरे तौर पर गंगा का देश भी कहा जाता है, जैसा कि सभी जानते है कि आस्था की यौनी में जन्म लेनेवाला यह भारत अपने गर्भ में गंगा और सागर को समेटे हुए है। अतः जिस देश में गंगा की पूजा अर्चना की जाती है, अतः गंगा का मान किया जाता है, धार्मिक विश्वास रखे जाते हों, लोगों के अन्दर एक दूसरे के प्रति आदर्श भावना रखी जाती हों, ऐसे देश के जीवन का चरित्र चित्रण मात्र भारत में ही देखने को मिल सकता है। संस्कृति की उपलब्धि के लिए भारत में कई ऐसे लोग भी आए जो कि मूल रुप से विदेशी थे लेकिन उन्होंने भारत में आकर भारतीय नीति को अपनाते हुए उनके आचार, व्यवहार को साहित्य को अपनाते हुए, उन्होंने भारत की संस्कृति को उच्च – स्तर पर पहुँचाने के लिए बहुत बड़ा अपना योगदान दिया है।

गौतम बुद्ध :

जापान और चीन, नेपाल आदि देशों में इनकी पूजा की जाती है। इनका स्मरण किया जाता है। जबकि भारत में ही इनका जन्म हुआ था। राम का वनवास किसी से अछूता नहीं है। पत्थर बनी अहिल्या राम के चरण – कमलों को छूकर सजीव हो उठी। संस्कृति की यह उपज ही ऐसी है कि संस्कृति सांस्कृति को जैसे एक रुप में बाँधने का प्रयत्न करती है। संस्कृति का इतिहास जितना पुराना है उसकी तुलना

आज नये रुपों में की जा रही है। संस्कृति की खुशबू जब भारत की जमी से उठ सकती है तो विश्व का वो कोना भी अछूता नहीं है जहाँ पर भारतीय संस्कृति के बीज का अंकुर अपने आप पल्लवित हो गया है।

भारतीय कहानियों में नाटकों में शकुन्तला का जिक्र होता है। दुश्यन्त का जिक्र होता है। उस नन्हें भरत का जिक्र होता है जिसके नाम पर भारत का नाम भारत पड़ा।

भारतीय लोगों की महिमा ही रही है कि वह अलग – अलग मुल्कों में जाकर अपनी – अपनी संस्कृति का इतना विस्तुतिकरण किया। विश्व का हरएक कोना भारतीय संस्कृति का कायल है। उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान, दक्षिण में लंका, पूर्व में वर्मा, हिन्द, चीन, जावा, यूनानी ऐसे कई राजनैतिक स्तर हैं जिसके आधार पर इन प्राचीन सभ्यताओं ने अपनी योग्यता के अनुरुप भारत की संस्कृति को विश्व की ओर मुखरित किया।

रुढ़ीवादीता, परंपरा, आदरभाव, महाकाव्य, ज्योतिष दर्शन, नीतिशास्त्र ऐसे कई पृष्ठ है जो इतिहास के पन्नों में समा तो गए लेकिन भारतीय संस्कृति रुपी वस्त्र को अपने शरीर से अलग नहीं कर सके और कई ऐसी नीतियों का उन्होंने प्रावधान किया है जिसके अन्तर्गत धार्मिक आडंबर भक्ति, महाभारत, रामायण जैसे उपनिषद् बातों का उल्लेख मिलता है। साथ में दार्शनिक विचार की समगोष्ठी का भी यहाँ पर निरूपण देखने को मिलता है, जिसके फलस्वरुप हम कह सकते है कि भारतीय संस्कृति का अस्तित्व किसी मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से रची हुई कल्पना नहीं है, बल्कि यह भारत की गंगा का वह स्त्रोत है जिसका उद्‌गम स्थल गंगोत्री से शुरु होता है और गंगा सागर में विलिन हो जाता है। अतः भारतीय संस्कृति का ओर और छोर भारतीय

संस्कृति के द्वारा उत्पन्न हुई संस्कृति को एक विशाल समुदाय से जोड़ती है जिसके अन्दर वैदिककाल में, मध्यकाल में, अपभ्रंश काल में और आधुनिक युग में भारतीय संस्कृति रुपी वृक्ष का ठोर चहूँ ओर देखने को मिल रहा है।

भारतीय संस्कृति पर विभिन्न संस्कृतियों का प्रभाव :

संस्कृति जहॉ पर समाज के प्रति अपना योगदान देती है वहीं दूसरी ओर बदलते हुए समय के परिवेश के साथ उनकी आधारशीला का भी जैसे विसर्जन सा होने लगता है।

जैसे कि बौद्ध धर्म की शिक्षा, दिशा को जितने लोगों ने अपनाया था उतने लोगों का साथ जैसे छूटता सा जा रहा है। क्योंकि बौद्ध धर्म को मानने वाले जैसे अब इतिहास में विलिन से हो गये है, जाति धर्म यह सभी मात्र दिखावा सा जान पड़ता है। तिब्बत, चीन आदि देशों में हिन्दू संप्रदायों का बोलबाला था, किन्तु समय की मिमांसा, संस्कृति की इस उपज का फल ज्यादा दिन तक नहीं भोग सकी, अतः हिन्दु संस्कृति स्वर्ण युग में तबदील होने के पश्चात् वैदिक काल और रामायण, महाभारत का युग भी जैसे समाप्त सा होने लगा, भारतीय संस्कृति में रामायण महाभारत की सांस्कृतिक चेतना में जैसे ठहराव सा आ गया। नैतिकता, वासना, उपनिषदकाल, कर्मकाण्ड आदि धारणाओं में परिवर्तन की गंगा बहने लगी, संयम की जगह अंधकार ने ले ली और सत्य की जगह असत्य ने।

पहले ईश्वर के लिए पूजा अर्चना की जाती थी, लेकिन अब ईश्वर के नाम पर पैसे को वसूला जाता है, हिंसा मानो जैसे प्रतिदिन हिंसा का वध करती हुई दिखाई पड़ती है। राम का लक्ष्मण ऐसा जान पड़ता है जैसा राम का नहीं रावण का भाई हो

इस तरह से भारतीय संस्कृति जिस तरह उदित हुई थी जिन पूजा अर्चना के साथ उनका उद्‌भव हुआ था उसका अंत होने लगा।

भारतीय संस्कृति को बनने में अथवा बनाने में कई जातियों का समावेश देखने को मिलता है। जैसे आर्य, द्रविड, दुण, शक, चीनी, पठान, मुगल इत्यादि।

कहते हैं कि आर्य की संस्कृति सबसे अधिक प्रसिद्ध थी, इस कारण भारतीय संस्कृति में आर्य संस्कृति का मिश्रण भरपूर देखने को मिलता है। आर्य में एकता कूट – कूटकर भरी होने के कारण द्रविड़ पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् समाज का एक ऐसा ढ़ाँचा सामने आया जिसके अन्तर्गत हिन्दु समाज में एकता का उद्‌भव हुआ।

अरब के मुसलमान ने जब पारसी ईरान से नाता तोड़ा फिर भारत आये तो साथ में उन्होंने अपनी संस्कृति को भी एक नया मोड़ दिया। हिन्दु शब्द देखा जाय तो विदेशी होने के बावजूद हिन्दुत्व पर अपना वरचस्व बनाये रखा। चीनी यात्री जब भारत आये तब वहाँ के लोग इस देश को आर्य शब्द से संबोधित करते थे। सबसे बड़ी बात यह है कि ईरान और उसके आसपास के क्षेत्र में जो सिन्धु नदी बहती थी, तो उनको उच्चारण मात्र से ही वे लोग सिन्धु को हिन्दु कहकर बुलाने लगे। ऐसी कई बातें है जो संस्कृति की उपज को अपने – अपने उर्वरक के द्वारा सिंचती है।

शैव धर्म द्रविड संस्कृति की एक अनुपम देन है। भारतीय संस्कृति में देवी – देवताओं का भी एक अनुपम प्रभाव देखने को मिला है। शंकर भगवान को तमिल में शिवम् दिया गया है, ठीक उसी तरह संस्कृत में शंभू शब्द की तुलना, तमिल भाषा के आधार पर ही की गई है, भाषा का विकास बहुत जल्दी होता है लेकिन हर एक भाषा के पीछे अपना एक मनलवा सिद्ध करना पड़ता है, लेकिन शिवम् का अर्थ होता है

खत वर्ण या लाल। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल के अन्तर्गत शिव को आर्य के नाम से भी जाना जाता है।

शिव अर्थात् गरलवान वाली कथा कि ओर यह संकेत करता है। उसी प्रकार संस्कृत में शम्भू शब्द कि तुलना तमिल भाषा में बोली जानेवाली शेम्भू शब्द से की गई है, तमिल में शेम्भू का अर्थ होता है ताँबा। यह लाल धातू वाला ताँबा।

ऐसे कई शाब्दिक भाव है जो भाषाओं के अन्दर लिप्त होने के बावजूद भारतीय संस्कृति को विभिन्न आयामों के साथ जोड़ते हुए नये – नये शब्द का मूल रुप साक्षात्कार होता है। ठीक उसी तरह वैष्णव धर्म, शैव धर्म के अन्तर्गत द्रविड प्रभाव का भी चलन कहीं – कहीं देखने को मिलता है। लेकिन उसका प्रमाण निश्चित तौर पर मौजूद है यह कहना मुश्किल है।

प्राचीन काल में वैष्णव धर्म की उत्पत्ति तीन तत्वों के योग से मानी गई है। प्रथम तत्व का उन्मोदन विष्णु नाम से खंडित किया गया है। किन्तु भारतीय संस्कृति में उसका अर्थ सूर्य के रुप में भी किया जाता है। दूसरा नारायण धर्म का संबंध भी विष्णु से है किन्तु इसकी पुष्टि महाभारत में, उपाख्यान में देखने को मिलती है। तीसरा तत्व वासुदेव के रुप में मिलता है, जो पुराने जमाने में एक राजा के नाम से प्रख्यात था। विष्णु के इन तीन तत्वों के आधार पर ही वैष्णव धर्म की उत्पत्ति हुई।

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों में कई बातों का इस तरह से जिक्र हुआ है कि संस्कृति को संस्कृति का चोला पहनाना ही पड़ा। वेद के मुताबिक सीता कृषि की अधिष्ठारनी देवी थी। माना जाता है कि यही सीता बाद में कन्या के रुप धर के राजा जनक को पृथ्वी के अन्दर हल चलाते हुए मिली। रामायण में लिखा हुआ कोई उपन्यास नहीं था, जो कि काल्पनिक तौर पर वाल्मिकी जी ने लिखकर भारतीय

संस्कृति को रामायण के रुप में एक उच्च कृति भेंट की। यह भारतीय संस्कृति का ऐसा अंग है जिसके अन्दर मानव को भी ईश्वर के रुप में पूजने की क्षमता प्रदान की गई। राम का जन्म मात्र कौशल्या देवी के कारण नहीं हुआ, बल्कि वेद में इन्द्र नाम से पूजा जानेवाला व्यक्ति ने बदलते हुए काल के परिवेश में परिवर्तित होकर राम का रुप धारण किया और इसी राम ने इन्द्र नाम से वत्रासुर का वध किया। इन्द्र का वत्रासुर का वध करना भारतीय संस्कृति में असत्य पर विजय प्राप्त करने में आंका गया है। वत्रासुर का अवतार रामायण के अन्दर रावण के रुप में हुआ। राम मर्यादा पुरुषोत्तम का स्वरुप, रावण और सीता का स्वरुप महज कोई नाटक नहीं था, बल्कि पुराने ऋषि मुनियों की दृष्टि का वह फल था, जो रामायण का रुप धर के हमारी भारतीय संस्कृति को कई नीति नियम के साथ जोड़ने का आचरण सिखा गया। पिता के लिए राजमहल का त्याग करना, सौतेली माँ की आज्ञा का पालन करना, भाई के लिए सिंहासन का बलिदान देना, भारतीय संस्कृति में यह बदलाव आज हमारे नीति नियमों के साथ चलने की कोशिश कर रहा है। आज रावण नहीं है, राम नहीं है, सीता नहीं है, लेकिन भारतीय संस्कृति ने इनकी पूजा अर्चना की है। अगर ऐसा नहीं होता तो रामनवमी का त्यौहार भी बडे उत्साह से आधुनिक युग में मनाया नहीं जाता।

कुछ इसी तरह से स्त्रीयों में भी कई परिवर्तन स्वरुप देखने को मिले, भारतीय स्त्रीयाँ ही साड़ी पहनती हैं क्योंकि दूसरे देशों में साड़ी का प्रचलन नहीं है। इस बात की ओर अगर ध्यान दिया जाय तो महाभारत में घटित घटना जिसमें द्रौपदी का चीर हरण का जिक्र मिलता है। जिस देश में मात्र मानव को देवता के रुप में पूजा जाय उस देश की संस्कृति का ऋणी वायु, सूर्य, पृथ्वी, आकाश और पानी भी क्यों न हो? अग्नि को हम पूजते हैं। अग्नि के सामने साक्षी किये गये वचन को हम पूरा करने की कोशिश करते हैं। अग्नि हमसे कहती नहीं कि मुझे साक्षी बनाओ लेकिन अग्नि के

सामने किये गये सात फेरे भारतीय संस्कृति के स्वरुप को एक नया परिवेश देती है। कहते है कि चन्द्रमा को देखने के पश्चात् दिन की गिनती हो जाती थी लेकिन चन्द्रमा को भी भारतीय संस्कृति ने देवता का रुप देकर उन्हें अपने उपवास में शामिल कर लिया है। जैसे कि करवा चौथ का व्रत विशाल पत्थर की आकृति का ढ़ाँचा अगर किसी देवी देवता के अनुरुप दिखता है तो उसे देवता मान लिया जाता है।

साथ में गंगा शब्द की उत्पत्ति अग्नेय जाति से हुई है कथा का विशाल भण्डार हिन्दु, पुराणों में कूट – कूटकर भरा हुआ है। और इसका बहुत बड़ा हिस्सा भारतीय संस्कृति में अग्नेय जाति से आया है। जैसे कि देवर – देवरानी तथा जेठ – जेठानी की प्रथा, लंका के राक्षसों के सम्बन्ध में विचित्र कथा, सिन्दुर का प्रयोग, निम्न अनुष्ठानों में नारियल के द्वारा पूजा करना यह सभी परंपराएँ देवी देवता के लिए शुभ माने जाते है। पशुओं की बलि करते वक्त पशु को तिलक लगाया जाता था, लेकिन वही रक्त सिन्दुर के रुप में भारतीय संस्कृति में सुहाग के रुप में माना गया है। यह सब आग्नेय जाति के लोगों द्वारा प्राप्त हुआ है। ऐसे कई अनुष्ठान हैं जो कि अग्नेय द्वारा प्रफुल्लित हुए है जैसे हवन करना, सिंदुर लेवन करना, यह भारतीय संस्कृति को एक नई दिशा प्रदान करते हैं। भारतीय संस्कृति एक ऐसा खेत है जिसके अन्दर संस्कृति के अलग – अलग बीज डाले गये हैं। जाति का बीज, पूजा अर्चना का बीज, वैवाहिक बीज, जन्म के अवसर पर उत्सव मनाने का बीज, मृत्यु के पश्चात तेरहवीं करने का बीज, जाति और परम्पराओं के मुताबिक अनश्वर देह को जलाने या दफनाने का बीज, यह सभी रीति रिवाज के मापदण्ड भारतीय संस्कृति की धरोहर के रुप में प्राप्त हुए हैं।

हिन्दु जाति मुस्लिम जाति से घृणा का भाव रखती है, कारण कि मुसलमानों का राज भारत पर बहुत दिनों तक रहा और मुसलमानों के शासन में हिन्दु जाति पर

किसी ना किसी रुप में अत्याचार होते ही रहे। इस्लाम का सूर्य उदय अरब में होने के कारण फारसी भाषा इस्लाम की भाषा और इरानी संस्कृति मुस्लिम की अपनी संस्कृति हो गयी। हालांकि इस्लाम की उत्पत्ति सामी संस्कृति के बीच हुई थी। किन्तु इरान आकर वे आर्य धर्म में तबदील हो गए। इस्लाम धर्म की सबसे बड़ी खूबी यह भी रही कि भारतीय संस्कृति को उसने राजनीति का रुप दे दिया।

शिया और सुन्नी खलीफा पद के लिए उठे थे लेकिन सियासी झगड़ों में ही दफन हो गए। भारतीय संस्कृति में सभी जातियों का सम्मान किया जाता है। सभी धर्मों को अपनाया जाता है और यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में सिक्ख धर्म के भीतर धर्म गुरु की स्थापना होने लगी।

कई मुस्लिम राजाओं के कारण धर्म को बार – बार जलील होना पड़ा और यही वजह है कि भारतीय संस्कृति में हिन्दु धर्म को जितना माना गया है उतना मुस्लिम धर्म को अपनाया नहीं गया। यह सभी परिणाम हिन्दु – मुस्लिम के युद्ध के दरम्यान सामने आये है। मंदिरों को जलाना, मूर्तियों को नष्ट करना यह सभी व्युत्पत्ति का शोक रुप भी भारतीय संस्कृति को देखना पड़ा। लेकिन मुस्लिम धर्म से भी भारतीय संस्कृति को एक नया आयाम मिला है। कुछ इनमें से मिले हैं जैसे बाँह में ताबीज बाँधना, पीर की मजार पर जाना, शादी – ब्याह के वक्त मेहंदी के द्वारा शगुन को आगे बढ़ाना, बेमिसाल प्रेम की यादगार का जूनुन ताजमहल के रुप में भारतीय संस्कृति को प्राप्त होना, यह हिन्दु मुस्लिम कि भावनाओं का ही प्रतीक है कि मुसिबत पड़ने पर महारानी जोधाबाई की रक्षा के लिए अकबर का सामने आना, हुमायूँ का रानी कर्णावती की रक्षा करना यह सभी हिन्दु स्त्री को बहन के रुप में सम्मानित करके राखी जैसे पवित्र रिश्ते को भारतीय संस्कृति में कायम करना। यह मुस्लिम रिवाजों से

हटकर होने के बावजूद भी राखी का त्योहार एक मुस्लिम की देन है ऐसा मान सकते है। अतः भारतीय संस्कृति जितनी पुरानी होती है उतनी ही नई नजर आती है।

लोक संस्कृति और उसकी विशिष्टता :

बदलते हुए समय के दौर में कई ऐसी बातों का जिक्र होने लगता है। जिसके अन्तर्गत सामाजिक अध्ययन जैसे प्रत्येक व्यक्ति से अपने होने का अलग – अलग परिभाषाओं में लिप्त होकर अपना मान – सम्मान पाना चाहता है। भारतीय लोक संस्कृति की परम्परा भी कुछ ऐसी ही रही। जैसा कि हम सभी जानते है कि संस्कृति और समाज एक दूसरे के पूरक होने के बावजूद भी एक दूसरे के आधार पर ही जीवित रहना चाहते हैं। आदर्श समाज की रचना का सूचक एक से ही संस्कृति ही होती है जो कि एक स्वस्थ समाज को जन्म देती है। समाज के अन्दर पनप रहे सभ्यता समाज के अन्दर उस दुल्हन के समान है जिसे ससुराल में जाते ही अपने – अपने नीति नियमों के साथ बाँध दिया जाता है। दुल्हन रुपी संस्कृति, समाज रुपी सभ्यता के साथ अपने धर्म का पालन करती है। भारतीय संस्कृति की अध्यात्मिकता, उनके अपने संस्कारों के विधान, ईश्वर के प्रति निस्वार्थ प्रेम, धर्म के प्रति जीवन का त्याग ऐसे कई स्वरुप हैं, संस्कृति के जो मनुष्य को संस्कृति, साहित्य, समाज आदि के साथ एकाकार होने के लिए प्रेरित करती है। वर्तमान दौर पर प्राचीन संस्कृति का एक चौथाई भाग जैसे विलिन सा होता जा रहा है। लेकिन इसी संस्कृति और समाज में लोक साहित्य का एक अलग ही स्वरुप देखने को मिल रहा है।

[30](यूरोप के 'ओल्ड टेस्टामेंट' की भाँति इन वैदिक रचनाओं को प्राचीन परंपराओं की रचना अर्थात् लोकवार्ता भी कहा जा सकता है तथा उसे प्राचीन आर्य जाति का साहित्य भी माना जा सकता है।)[30]

समाज में जैसे नये शिशु का आगमन होता है, ठीक उसी प्रकार ईशा.· की प्रथम शताब्दी के आसपास भारतीय परंपरा में लोक संस्कृति का विकास होना आरंभ हो गया, निश्चितत तौर पर देखा जाय तो भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत लोक साहित्य परंपरा को दो भागों में विभक्त किया गया है। (१) काव्य परंपरा (२) लोक काव्य परंपरा। लेकिन बदलते हुए अन्तराल के पश्चात् इस अध्याय के अन्दर कुछ और ऐसे पन्ने जुड़ गये जो लोकवार्ता का आधुनिकरण बनकर रह गए।

शोध करने के पश्चात यह पता चला कि लोकवार्ता का यह अध्याय जैसे प्राचीन काल में था ही नहीं। लेकिन कुछ लोगों के मनतव्य के अनुसार कुछ विद्वानों के प्रयत्न से भारतीय आचार्यों ने लोकवार्ता का आरंभ किया, जिसके अन्दर दर्शन शास्त्र, काव्य शास्त्र और धर्म शास्त्र जैसे का उल्लेख देखने को मिलता है। भारतीय इतिहास के संदर्भ के अनुसार लोक तात्विक दृष्टियों को निम्न लिखित शिर्षकों के द्वारा बाँटा गया है।

[३१]((१) संस्कृत काव्य – शास्त्रियों की दृष्टि, (२) धर्मगाथाओं – अध्येताओं की दृष्टि,(३) कथा साहित्य अध्येताओं की दृष्टि, (४) प्राचीन साहित्य के स्त्रोत, (५) लोकवार्ता संग्रह – कर्ताओं की दृष्टि, (६) प्राचीन साहित्य में लोकतत्व)[३१]

(१) संस्कृति काव्य शास्त्रों की दृष्टि :

संस्कृत काव्य शास्त्र के आचार्य भरत मुनि से लेकर विश्वनाथ कविराज ने इस लौकिक काव्य परंपरा को कुछ हद तक वेग देने का प्रयत्न किया है। कुछ आरंभिक आचार्यों ने जैसे दांडी, भामा, भरत इन्होंने तो लोकधर्मी काव्य के प्रति अपने भावों का जैसे संस्कृति के उपर विसर्जन सा कर दिया है। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में कई ऐसे नाटकों का वर्णन किया है। जिसके फलस्वरुप उन्हें नाटक की उत्पत्ति का

सर्जक माना गया है। रासलीला स्वांग, जात्रा, भवाई ये सब प्राचीन काल के परिवर्तित स्वरुप है। नाटक की उत्पत्ति से ही समाज की चेतना का मूल्यांकन किया जा सकता है।

[३२](प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार ब्रह्मा ने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अर्थवेद से विभिन्न तत्व लेकर जिस पंचम नाट्यवेद की सृष्टि की उसका निर्माण सभी जातियों के अनुरंजन के लिए हुआ था। इस पंचम नाट्यवेद के बनाने का मुख्य कारण यही था कि वेदों का पठन – पाठन शूद्र जाति के लिए निषिद्ध था। अतः वर्णों के मनोरंजन हेतु एक समान आधार की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। इसी आवश्यकता के फलस्वरुप नाटक का जन्म हुआ।)[३२]

अतः नाट्य शास्त्र की उत्पत्ति के पश्चात् उनके अन्तर्गत कई नये आयामों की अनुभूति होने लगी। लोक प्रचलित गान शैली, भाषा का रुप, परंपरायें, लोक विश्वास तथा उनके काव्य रुपों का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि किसी भी नाटक का आरंभ करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश का स्मरण किया जाता है, और यह विधा ऐसी है कि माना जाय तो उत्तम है ना माना जाय तो इस बातों का कोई मतलब नहीं है। लोक विश्वास करता स्वरुप देवता को प्रसन्न रखना और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना ही नाटक को एक नयी उपलब्धि के साथ आगे बढ़ने में सहायक होता है। इसके अन्तर्गत लोक संस्कृति में मानो जैसे एक नये अध्याय की शुरुआत होती है।

(२) धर्म गाथाओं अध्येताओं की दृष्टि :

समाज की जरुरत, धर्म के उपासक, परंपराएँ या रीति रिवाज, ये सभी समाज के वह अंग है जिससे समाज के अन्दर एक नई संस्कृति का आहवान करते हुए नजर आते हैं। माना जाता है कि देवी देवताओं की उत्पत्ति अथवा उनका उद्भव सूर्य से है,

परन्तु संस्कृति शिलालेखों में इस बात का जिक्र करना पूरी तरह से सही नहीं है, धर्म का सचालन जाति से भी किया जा सकता है। लोक संस्कृति के अन्दर लोक कथा और पशु कथा का बहुत बड़ा योगदान है, और इन्हीं योगदान के तहत ही लोक संस्कृति की स्थापना मानो हुई हो, जैसे कि लोक संस्कृति में इस तरह के भी कई उल्लेख मिलते है कि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए अशस्त्रों और शस्त्र का उपयोग करना अनिवार्य माना जाता है। राम कथा, महाभारत आदि के मूल स्त्रोत इस तथ्य की ओर इशारा करते है कि धर्म के कारण ही लोक – संस्कृति कि स्थापना हुई है। वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत, महाकाव्य आदि से पता चलता है कि विकसित लोकसंस्कृति में इन सभी अध्याय के अन्दर कई ऐसी विधाएँ मौजूद थी जिन्होंने लोक संस्कृति को एक नये आयाम की ओर अग्रसर किया। कहा जाता है कि संस्कृति और लोगों का अभिप्राय अलग – अलग दृष्टिकोण के मापदण्डों के साथ उभरता रहा। **इस तथ्य में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि लोक संस्कृति जितना भारत में पनपी है किसी और देश में नहीं।**

शादी ब्याह के गीत साहित्य का एक रुप ले सकती है। परन्तु संस्कृति की गरिमा को कम नहीं कर सकती। अतः धर्म की प्रचुरता धर्म की ओर ही विमुख होती है।

(३) कथा साहित्य अध्येताओं की दृष्टि :

कथा साहित्य के अन्तर्गत संस्कृति से ही उत्पन्न हुए संस्कृत का भी अपना एक भाग है। जिसके अन्दर लोक – संस्कृति का जिक्र होते ही कई ऐसे तथ्य सामने आये है जिसके अन्तर्गत [33](१९वीं शताब्दी में रेनोल्ड कोहल्ट, इमानुएल कास्क्विन के

अतिरिक्त वर्तमान शताब्दी में टाउनी, पैंजर ब्लूमकील्ड, नॉर्मन ब्राउन आदि अनेक विद्वानों ने अध्ययन की इसी दिशा को विस्तृत किया है।)[३३]

कुछ लोगों का मानना था कि घटनाओं वाली लोक कथाएँ शायद भारोपय हैं किन्तु ऐसा नहीं था, क्योंकि लोककथा का श्री गणेश दुनियाँ के हर कोने में अपनी भाषा के द्वारा अपनी निष्ठा को बरकरार रखे हुए है जादू टोना यह प्रचुर मात्रा में देश के हर कोने में विद्यमान है लेकिन चार वेदों से हमें यह ज्ञात हो जाता है कि जादू – टोने का यह चक्र चीरकाल तक चलता रहेगा।

बिल्ली का रास्ता काट लेना, मध्यरात्री को कौवे का बोलना, कुत्ते का रोना, घर के मुंडेर पर उल्लू का बैठना, यात्रा में जाते वक्त दूध का न पीना, ऐसी कई अवधारणाएँ है जो लोक संस्कृति के साथ सहारे का काम करती है।

(४) प्राचीन साहित्य के स्त्रोत :

प्राचीन साहित्य में भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ कुछ नये रुपों में सामने आती हुई नजर आई क्योंकि भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक मूल्यों के साथ को रिक्त नहीं करना चाहती थी, इसलिए भक्तित्व संस्कृति का उदयकाल होना प्रारंभ हुआ जहाँ पर ईश्वर की आराधना होती। वहीं पर आदर्श जीवन का अनुराग होता। हालॉकि प्राचीन संस्कृति के मुताबिक भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता का बहुत बड़ा योगदान है।

(५) लोक वार्ता संग्रह कर्ताओं की दृष्टि :

भारतीय तंत्र में कई ऐसे नये आयाम जुड़े जिसके अन्तर्गत अंग्रेजी हुकुमत ने अपना वरचस्व बनाये रखा। रीति रिवाज, परंपरा, धर्म, उपासक, व्यापार आदि भूमिकाओं को महत्व का स्थान देते हुए धर्म को संस्कृति के अध्याय से जोड़ने का

प्रयत्न किया। कहा जाता है कि धर्म से समाज और व्यक्ति के जीवन में बदलाव आता है। अतः लोक वार्ता का निर्णय भी संस्कृति के विघटन से जान पड़ता है कि किस तरह संस्कृति सामाजिक संरचना को एक नया मार्ग देती है।

(६) प्राचीन साहित्य में लोकतत्व :

आधुनिक काल में भारतीय लोक संस्कृति का विवेचन करते हुए एतंव् वैदिक काल की परंपरा को एक नयी कथाओं के साथ जोड़ने का कार्य किया गया है।

भौतिक जीवन की भौतिकता संस्कृति का क्षेत्र और लोकवार्ता का अध्ययन इस बात का सूचक है कि भारत में जितनी भी प्राचीन संस्कृति है वह प्रतिदिन नये – नये आयामों को जन्म देती है। गाथा, कथा, आख्यान दीर्घकालीन होने के बावजूद समाज के प्रति अपनी विचारधारा को अपनी तरह से अग्रसर करती है।

प्राचीन रीति रिवाज, आचार विचार, कथागीत, लोक गीत, यह सभी जितने सुनने में रोचक लगते हैं। उतने ही ये भारतीय संस्कृति के करीब से जान पड़ते हैं।

संदर्भ सूची

१ लोक सस्कृति–वसत निरगुणे – पृ सं. १

२ वही . . पृ.स २

३. लोक संस्कृति – वसंत निरगुणे – पृ.सं. ४, ५

४ वही पृ स ७

५ सांस्कृतिक भूगोल – डॉ मुनीरुद्दीन रिजवी – पृ सं. १५, १६

६. जातक कालीन भारतीय संस्कृति – पं. मोहनलाल महतो वियोगी – पृ.सं. १३

७. वही . .. पृ.सं १४

८. समाज और सस्कृति – डॉ सावित्रीचंद्र शोभा उपाध्याय – अध्याय – ५

९. संस्कृति संगम – आचार्य क्षिति मोहन सेन – पृ.स. ११

१०. लोक संस्कृति – बसत निरगुणे – प्राक्कथन

११ वही . . पृ स ७

१२. प्राचीन भारतीय संस्कृति – सामाजिक सिद्धांतों का वैज्ञानिक विश्लेषण –
डॉ. विरेन्द्रकुमार सिंह – अथ

१३. प्राचीन भारतवर्ष की जनसत्ता और संस्कृति – श्री बेनी प्रसाद वाजपेयी मंजुल – पृ.सं. ६६

१४ जातक कालीन भारतीय संस्कृति – पं. मोहनलाल महतो वियोगी – पृ.सं. १३

१५ जातक कालीन भारतीय सस्कृति – पं. मोहनलाल महतो वियोगी – पृ.सं. १३

१६. वही . .. पृ.सं १३

१७. भारत की प्राचीन सस्कृति – रामजी उपाध्याय – पृ स ३, ४

१८. जातक कालीन भारतीय संस्कृति – पं. मोहनलाल महतो वियोगी – पृ.सं. ३८

१९ वही . . पृ.सं. ४०

२०. वही . ... पृ.सं. १३

२१. भारत की प्राचीन सस्कृति – रामजी उपाध्याय – पृ स १०

२२. लोक संस्कृति – वसंत निरगुणे – पृ.सं ७

२३. वही . . पृ.सं १२

२४ हिन्दी वाङ्मय का विकास – डॉ. चौधरी सत्यदेव – पृ.सं २०१ से २०७

२५. भक्ति आदोलन इतिहास और संस्कृति – स कुँवर पालसिंह – पृ सं. ६०

२६ वही . . . . पृ स ६ (भूमिका)

२७. नरेश मेहता – पृ सं ४६

२८ लोक साहित्य का अध्ययन – भारतीय पृष्ठ भूमि – डॉ इन्दु यादव – पृ सं. ४२

२९ वही . . . पृ स ४३

३०. वही . पृ स ४४

३१. वही .. .. पृ.सं ५२

३२. वही .... पृ सं. ५३

३३ वही पृ स ५३